स्वास्थ्य-साधन

[स्वास्थ्य पर महात्मा गान्धी के अनुभव]

लेखकः—

महात्मा गान्धी

श्री गान्धी ग्रन्थागार

सी ७।१४० सेनपुरा

बनारस

प्रथम बार १९४० ई० : द्वितीय बार १९४१ ई०
तृतीय बार १९४३ ई० : चतुर्थ बार १९४८ ई०
पंचम बार १९५१ ई०

[सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा सुरक्षित]

मुद्रक
आधुनिक मुद्रण मन्दिर
ढुण्ढिराज, बनारस

विषय सूची

१—स्वास्थ ... ...

२—हमारा शरीर ... ...

३—वायु ....

४—जल ....

५—भोजन ... ...

६—भोजन की मर्यादा ... ...

७—व्यायाम ....

८—पोशाक (पहिनावा) ... .

९—पुरुष-स्त्री का संयोग ... ...

१०—वायु-चिकित्सा ... ...

११—जल चिकित्सा ....

१२—मिट्टी-चिकित्सा ... ...

१३—ज्वर और उसकी चिकित्सा ...

१४—कब्ज, संग्रहणी, पेचिस और बवासीर ...

१५—छूत के रोग— शीतला (चेचक) ....

१६—छूत के अन्य दूसरे रोग ... ...

१७—सौरी और ज़च्चा-बच्चा ... .

१८—शिशु-पालन ... .

१९—कुछ आकस्मिक घटनाएँ ... १०

डूबना, जलना, सर्प का काटना, बिच्छू का काटना

२०—उपसंहार ११

प्रस्तावना

ने भी अधिक समय से मैं स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों पर
हा हूँ। जब मैं इंग्लैंड में था, तब अपने विशेष रहन-
मुझे अपने खाने-पीने का खास प्रबन्ध करना पड़ता
ों से मेरा जो कुछ अनुभव इस विषय में हुआ है, उसे
चाहिये। उसी अनुभव के आधार पर मैंने कुछ खास
र किया है और उन्हीं को अपने पाठकों के लाभार्थ लिख

एक कहावत है कि "रोग दूर करने की अपेक्षा उसे न
च्छा है।" रोगों को होने देने से उसे रोक देना बहुत
भदायक है। क्योंकि वे अधिकांश में हमारी अज्ञानता
नी से हुआ करते हैं। अतः यह सभी विचारशील मनुष्यों
कि वे स्वास्थ्य के नियमों को अच्छी तरह समझें। इस
ने का मुख्य उद्देश्य उन्हीं नियमों को समझना है। साथ
था रोगों का उपचार भी बतलाना है।
विद्वान् का मिल्टन कथन है कि हम चाहें तो स्वर्ग
र्क को स्वर्ग बना सकते हैं। यह बात हमारे आधीन है।
समान में नहीं है, और न नर्क कहीं जमीन के अन्दर।
संस्कृत के श्लोक में भी कही गयी है कि "मन एवं मनु-

अधिकार की बात है। रोग केवल हमारे कर्मों का ही फल नहीं
विचारों का भी फल है। एक डाक्टर का कहना है कि मनुष
कालरा और प्लेग की अपेक्षा उनके भय से अधिक मरते हैं।
कुल सत्य है कि डरपोक मनुष्य अपनी मृत्यु के पहिले कई बार

अज्ञानता ही प्रायः रोगों का कारण हुआ करती है। बहुध
रण रोगों में भी उसका उपचार न जानने के कारण हम घबड़ा
और उससे छुटकारा पाने के लिये उल्टा-सुल्टा उपचार कर भ
उपस्थित कर देते हैं। स्वास्थ्य के साधारण नियमों को न
कारण हम गलत औषधि का प्रयोग करते हैं या किसी अनाड़
शरण लेते हैं। कितने आश्चर्य की बात है कि हम अपने पास की
की जानकारी दूर की वस्तुओं की अपेक्षा बहुत कम रखते हैं, ह
अपने गाँव या मुहल्ले के विषय में कुछ नहीं जानते, लेकिन
पहाड़ और नदियों के बारे में भली-भाँति बतला सकते हैं। ह
मान के तारों के विषय में जानकारी प्राप्त करने का तो उद्योग
लेकिन अपने घर की चीजों के बारे में नहीं। हम प्रकृति के
नाटक की ओर तो ध्यान नहीं देते, लेकिन मनुष्यकृत नाट्यश
देखने के लिये बेचैन रहते हैं। हम अपने शरीर की रचना—
ड्डियाँ कैसे बढ़ती हैं, खून का दौरा कैसे होता है, एवं किस प्रका
हो जाता है, किस प्रकार बुरी भावनाओं में पड़कर हमारी इन्द्रि
जित होती हैं, किस प्रकार हमारे मस्तिष्क को आराम मिलता
विषयों की अनभिज्ञता पर लज्जित नहीं होते। शरीर से बढ़क
घनिष्ठता रखने वाली कोई दूसरी वस्तु नहीं है। परन्तु आश्च
उससे जितना हम अनभिज्ञ हैं उतना और किसी चीज से नहीं

कर्तव्य है कि इस कठिनाई को दूर करें। प्रत्येक व्यक्ति
के वह अपने शरीर के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान रक्खे।
भी ऐसी शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिये। अभी हमें
ल्सियों का भी उपचार नहीं मालूम है; यहाँ तक कि
काँटा चुभ जाय, तो हम अपनी असमर्थता दिखलाते
प काट ले तो हम बिलकुल घबड़ा जाते हैं। यदि इन
अपनी अज्ञानता का विचार करें, तो हमें लज्जा से
करना पड़ेगा। यह कहना कि साधारण मनुष्य इन
न सकता, हमारी निरी मूर्खता है। यह पुस्तक इसी
गयी है कि जो इन विषयों को जानना चाहेंगे, आसानी

का यह मतलब कदापि नहीं है कि जो कुछ भी मैंने
खा है उसे पहिले किसी ने नहीं बतलाया। इसमें
बात यह मिलेगी कि बहुतेरी पुस्तकों के पढ़ने के बाद
व प्राप्त करने के बाद यह पुस्तक सिलसिलेवार लिखी
तिरिक्त वे लोग जिनके लिये यह एक नया विषय है,
में पड़ने से बच सकते हैं। जिसमें एक ही रोग में
राय है कि गर्म पानी का प्रयोग होना चाहिए और
नहीं, ठंडे पानी का। ऐसे विरोधी विचारों पर मैंने
अपना एक निश्चित मत स्थिर किया है, और तब
में किया है ताकि इसके पढ़ने वाले कही हुई बातों पर
करें।
ों में भी हमें डाक्टर की शरण लेने की आदत सी पड़

उसने भी अपने पिताके पास जा कर शमशेर बहादुरकी भाँति अपना हिस्सा माँगा।

वृद्धने जवाब दिया:—"बेटा! कमाई करके तू तो घरमें एक पैसा भी नहीं लाया। तेरे भाई मूर्खराजकी महनत कर करके कमर तक झुक गई। अतः तुझे हिस्सा दे कर मूर्ख पर और मोंघी पर अन्याय कैसे करूँ?"

धनवंतरीने कहा:—"मूर्ख तो वास्तवमें मूर्ख ही है। उसका तो ब्याह भी नहीं होगा। उसे कौन छोकरी देगा? और मोंघीको खाना पीना मिला तो बस है।" फिर उसने मूर्खराजकी तरफ देख कर कहा:—"मूर्ख, क्या तू मुझे आधा हिस्सा नहीं देगा? मैं हल आदि कोई चीज नहीं माँगता। जानवरोंमेंसे सिर्फ काला घोड़ा माँगता हूँ। और नाजमेंसे आधा हिस्सा।"

मूर्खराजने हँस कर उत्तर दिया:—"अच्छा भाई तू इसीसे प्रसन्न होता है तो ले जा। मैं और भी ज्यादा परिश्रम कर लूँगा।"

इस तरह धनवंतरी भी हिस्सा ले गया। मूर्खराज अपने खेतमें कठिन परिश्रम करता। बहरी बहिन यथा शक्ति उसकी सहायता करती। मातापिता तो वृद्ध हो गये थे, इसलिए उनकी कमाईका घरमें कुछ भी नहीं रहा था। जो कुछ था वह मूर्खराजकी कमाईहीका था। तो भी उसने शमशेर बहादुर और धनवंतरीको हिस्सा दे दिया। मूर्खराजके पास विशेष कुछ न रहा। उसके पास एक बूढ़ा बैल रहा था। उसीसे वह जितना हो सकता था खेतमें काम लेता था; बाकी काम अपने हाथोंसे करता था। दिनभर कठोर परिश्रम करता और जैसे तैसे करके अपने मातापिताका तथा अपनी गूँगी-बहरी बहनका भरणपोषण करता था।

बहुतों को आजन्म रोग ग्रसित पाते हैं, यद्यपि वे सदैव औषधियों का प्रयोग करते रहते हैं। प्रायः वे आज इस डाक्टर की, तो कल उस डाक्टर की दवा करते ही रहते हैं। वे जीवन भर ऐसे डाक्टर की खोज में लगे रहते हैं, जो उनका रोग सदैव के लिये दूर कर दे। स्वर्गीय जज स्टीवन (जो कुछ दिन हिन्दुस्तान में था) कहा करता था कि बड़े आश्चर्य की बात है कि जिन जड़ी-बूटियों से वैद्य लोग अनभिज्ञ हैं, वे उन्हीं को औषधि के रूप में, शरीर में पहुँचाते हैं। पूर्ण अनुभव प्राप्त करने के पश्चात् डाक्टर लोग भी अब यही कहते हैं। सर अस्टली कूपर का कहना है कि औषधियों का ज्ञान केवल काल्पनिक है। सरजान फारब्ज का कहना है कि बहुत-सी औषधियों के होते हुए भी रोग अधिकतर प्राकृतिक नियमानुसार ही दूर किया जा सकता है। डा० फ्रेंक तथा डा० वेकर की यह धारणा है कि अधिकांश रोगी रोग से नहीं बल्कि औषधि के कारण मर जाते हैं। डा० मेसनगुड ने तो यहाँ तक कह डाला है कि युद्ध और अकाल से जितने लोग नहीं मरते, उससे कहीं अधिक औषधि के प्रयोग से मरते हैं।

यह भी एक अनुभव की बात है कि जिस स्थान पर जितना ही अधिक डाक्टर की संख्या बढ़ती है, उतने ही हमारे रोग भी बढ़ते जाते हैं। औषधियों का प्रचार इतना अधिक बढ़ गया है कि साधारण पत्रों में भी उनके विज्ञापन पाये जाते हैं। एक नयी प्रकाशित पुस्तक में यहाँ तक लिखा गया है कि हम सिरप, फ्रूट, साल्ट, सार्सापरिला जैसी पेटेन्ट औषधियों का मूल्य केवल दो रुपये से पाँच रुपये तक ही लेते हैं। पाठक यह नहीं जानते कि इन औषधियों का वास्तविक मूल्य केवल एक या दो आना होता है। इसीसे उनके बनाने की क्रिया गुप्त रखी जाती है।

उपरोक्त कारणों से हमारे पाठक समझ गये होंगे कि रोग होने पर डा० की सहायता की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। हाँ, जो लोग डाक्टर एवं औषधियों का बहिष्कार नहीं कर सकते, हम यही कहेंगे कि यथासाध्य वे अपने ऊपर विश्वास रखें और डाक्टर को अधिक न सतावें और यदि उन्हें डाक्टर की सहायता अनिवार्य ही हो जाय, तो कम-से-कम किसी योग्य डा० को बुलावें और उसी के मतानुसार चलें। किसी दूसरे व्यक्ति को तब तक न बुलावें, जब तक कि डाक्टर स्वयं न बुलाने को कहें। लेकिन यह याद रहे कि रोगों को जड़ से दूर करना डाक्टर के हाथ में नहीं है।

फिनिक्स-नैटाल } —मोहनदास कर्मचन्द गांधी।

१—स्वास्थ्य

बहुधा लोग उस मनुष्य को नीरोग समझते हैं, जो चल-फिर लेता है, खाता-पिता है और जिसे वैद्य की आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु विचार करने से ज्ञात हो जायगा कि यह उनकी भूल है। अधिकांश मनुष्य ऐसा करने पर भी रोगग्रसित होते हैं। यह केवल उनका भ्रम है कि वे नीरोग हैं, क्योंकि वे इस पर पूरा विचार नहीं करते।

पूर्णतः स्वस्थ मनुष्य इस संसार में बहुत कम हैं। सत्य ही कहा गया है कि केवल वही मनुष्य स्वस्थ है, जिसका स्वस्थ मस्तिष्क स्वस्थ शरीर में है। शरीर और मस्तिष्क में इतनी घनिष्ठता है कि एक के अभाव में दूसरा स्थिर नहीं रह सकता। यह बात गुलाब के फूल से स्पष्ट हो जाती है, क्योंकि मनुष्य मात्र उसके रंग की अपेक्षा उसके सुगन्ध को अधिक पसन्द करते हैं। ठीक इसी प्रकार शारीरिक बल की अपेक्षा मानसिक तथा आध्यात्मिक बल कहीं अधिक श्रेयष्कर है। कोई भी मनुष्य कागज के बनावटी फूल के रंग को देख कर उसमें सुगन्ध की आशा नहीं करता। ठीक उसी तरह उस मनुष्य की अपेक्षा जो केवल शरीर से स्वस्थ है हम उसकी अधिक प्रतिष्ठा करते हैं, जो स्वच्छ विचारवाला और सुचरित्र है। शरीर और आत्मा दोनों ही आवश्यक हैं, यह बात सत्य है, फिर भी आत्मा शरीर

की अपेक्षा अधिक आवश्यक है। जो सच्चरित्र नहीं है, वह स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। वह शरीर जिसमें दूषित विचार भरे पड़े हैं। उसे रोगग्रसित ही समझना चाहिये। इसलिए यह स्पष्ट होता है कि सच्चरित्रता ही स्वस्थ्य की नींव है। हम लोगों को यह मानना पड़ेगा कि हमारे अन्दर कलुषित विचार भी एक भयानक रोग ही है।

विचार करने से हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि जिसके शरीर का गठन अच्छा है, जिसके दाँत आँख अच्छी दशा में हैं, जिसके कान स्वच्छ हैं, जिसकी त्वचा से दुर्गन्ध रहित पसीना खूब निकलता है, जिसके मुँह से बदबू नहीं आती और जिसके हाथ-पाँव अच्छी तरह अपना काम कर लेते हैं, जिसका शरीर औसत दर्जे का है और जिसको अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार है वही पूर्ण स्वस्थ है।

ऐसा स्वस्थ शरीर पाना कठिन है और उसे पाकर कायम रखना और भी कठिन है। हम पूर्णतया स्वस्थ नहीं हैं, इसके मुख्य कारण हमारे माता-पिता हैं। एक प्रसिद्ध लेखक का कहना है कि यदि माता-पिता स्वस्थ हों तो उनकी सन्तान भी उनसे अधिक स्वस्थ होंगी। पूर्ण स्वस्थ मनुष्य मृत्यु से नहीं डरता है। मृत्यु से डरना अस्वस्थ होने का चिन्ह है। अस्तु, हमारा कर्तव्य है कि हम अपने को पूर्ण स्वस्थ बनावें। अब हमें यह देखना है कि हम पूर्ण स्वस्थ कैसे हो सकते हैं एवं प्राप्त किये हुये स्वास्थ्य को कैसे स्थिर रख सकते हैं।

२—हमारा शरीर

यह संसार आकाश, जल, हवा, अग्नि और पृथ्वी इन पाँच तत्त्वों से बना है। हमारा शरीर भी इन्हीं से बना है। शरीर में

इनका उचित परिमाण अत्यन्त आवश्यक है। शरीर के लिए शुद्ध मिट्टी, स्वच्छ जल, शुद्ध अग्नि एवं स्वच्छ वायु की आवश्यकता है। अगर इन तत्त्वों में से एक भी उचित अंश में नहीं पहुँचा, तो मनुष्य रोग ग्रसित हो जाता है।

मनुष्य का शरीर, त्वचा, हड्डी, मांस और रक्त से बना है। शरीर का ढाँचा हड्डियों से बना है, लेकिन उनकी सहायता से न तो हम घूम सकते हैं और न खड़े ही रह सकते हैं। ये हड्डियाँ शरीर के कोमल भागों की रक्षा करती हैं। मस्तिष्क की रक्षा खोपड़ी की हड्डियों से होती है। दिल और फेफड़ों की रक्षा पसली की हड्डियाँ करती हैं। डाक्टरों की राय में मनुष्य के शरीर में २३८ हड्डियाँ हैं। हड्डियों का ऊपरी भाग सख्त होता है, लेकिन भीतरी भाग कोमल तथा खोखला होता है। दो हड्डियों का जोड़ मुलायम मज्जा से ढका रहता है मज्जा भी कोमल हड्डी कही जा सकती है।

दाँतों की गणना भी हड्डियों में की जाती है। दूध के दाँत बचपन में दीख पड़ते हैं, कुछ दिनों बाद ये दाँत टूट जाते हैं और उनकी जगह स्थायी दाँत जम जाते हैं। जब स्थायी दाँत गिर जाते हैं तो उनकी जगह पुनः नये दाँत नहीं निकलते। दूध का दाँत छः-सात माह से निकलना शुरू होता है और दो ढाई साल तक निकलता है। स्थायी दाँत पाँच साल के बाद निकलना प्रारम्भ होता है। और सत्रह से पचीस साल के अन्दर पूरा निकल आता है। दाढ़ों का नम्बर अन्त में आता है।

खाल के नीचे कहीं-कहीं पर लचकीलापन महसूस होता है। जिसे स्नायु कहते हैं। जबड़े की हरकत और आँखों का बन्द होना इन्हीं स्नायुओं पर निर्भर है। हमारे शरीर के भिन्न भिन्न हिस्से भी इन्हीं स्नायुओं के द्वारा अपना काम करते हैं। इस पुस्तक में शरीर की हड्डियों का विस्तृत विवरण नहीं दिया जा सकत

क्योंकि मुझको भी इसके विषय में पूर्ण ज्ञान नहीं है। अतः मैं उतना ही विवरण दे रहा हूँ जितना कि हमारे लिए आवश्यक है।

शरीर का सबसे मुख्य अंग पेट है। यदि पेट क्षण भर के लिए भी अपना काम बन्द कर दे तो सारे शरीर की क्रिया बन्द हो जायगी। जो भार उदर के ऊपर रहता है, वह जंगली जानवरों के सहन शक्ति से भी कहीं बढ़कर होता है। पेट का काम भोजन पचाना और सारे शरीर को शक्तिशाली बनाना है। पेट का सम्बन्ध शरीर से वैसा ही है जैसा कि रेलवे ट्रेन का भाप के इंजिन से। पाचक रस पेट से उत्पन्न होकर भोजन पचाता है और व्यर्थ वस्तु को मल-मूत्र के रूप में बाहर निकाल देता है। पेट की दाहिनी ओर जिगर और बाईं ओर तिल्ली हैं। जिगर का काम रक्त साफ करना तथा पित्त उत्पन्न करना है जिससे पाचन में बहुत सहायता मिलती है।

पसलियों से हृदय और फेफड़े दोनों ढँके हैं। हृदय दोनों फेफड़े के मध्य में है, लेकिन इसका झुकाव बायीं ओर है। सीने में कुल चौबीस हड्डियाँ हैं। पाँचवीं और छठीं पसली के मध्य में दिल की धड़कन महसूस होती है। फेफड़े हवा की नली से मिले हुए हैं जिससे हम लोग साँस लेते हैं। जो हवा फेफड़ों में आती है वह अशुद्ध रक्त को साफ बनाती है। मुँह की अपेक्षा नाक से साँस लेना लाभप्रद है।

शरीर की सब हरकतें रक्त-संचार के ऊपर निर्भर हैं। रक्त ही के द्वारा सारे शरीर का पालन होता है। यह भोजन से पुष्टकारक पदार्थ को अपने में ले लेता है और व्यर्थ वस्तु को मलमूत्र के रूप में बाहर निकाल देता है, और इस तरह शरीर को गर्म रखता है। नसों और धमनियों द्वारा रक्त का संचार प्रतिक्षण

होता रहता है। रक्त ही के संसार से नाड़ी में धड़कन पैदा होती है। स्वस्थ मनुष्य की नाड़ी में एक मिनट में ७५ धड़कनें होती हैं। बच्चों की अपेक्षा बूढ़ों की नाड़ी सुस्त चलती है।

वायु द्वारा रक्त साफ होता है। जब रक्त एक बार शरीर का पूर्ण चक्कर लगाकर फेफड़ों में लौटता है तो वह दूषित तथा जहरीला हो जाता है। आक्स्जिन जो वायु में मिलता रहता है, खून को साफ करता है। जब यह साँस द्वारा हमारे फेफड़ों में जाता है तो नाइट्रोजन विषैली वस्तु को लेकर साँस द्वारा बाहर निकल जाता है। यह क्रिया बराबर होती रहती है।

चूँकि शरीर के लिए वायु अत्यन्त आवश्यकीय वस्तु है, अतः अगले पृष्ठों में हम इसकी विवेचना करेंगे।

३—वायु

जीवन के लिये सबसे आवश्यकीय वस्तु हवा, जल और भोजन है। लेकिन हवा सबसे अधिक आवश्यक है। इसी कारण ईश्वर की कृपा से यह हमें अधिक मात्रा में मिल जाती है और इसके लिए हमें कुछ नहीं देना पड़ता। आधुनिक सभ्यता ने स्वच्छ हवा को कुछ अंशों में अप्राप्य कर दिया है जिसकी प्राप्ति के लिए हमें पैसा लगाकर बाहर जाना पड़ता है। बम्बई के रहने वाले आयेरन या उससे भी अच्छा मालाबार की पहाड़ियों में जाकर स्वास्थ्य लाभ करते हैं, लेकिन सभी इन स्थानों पर बिना पैसा खर्च किये नहीं जा सकते। इसलिए आजकल यह कहना अनुचित ही होगा कि हम लोग स्वच्छ हवा मुफ्त में ही पाते हैं।

हमें मानना पड़ेगा कि हवा के बिना जीवित रहना असम्भव है। हम जानते हैं कि रक्त का संचार सारे शरीर में होता है, फिर फेफड़ों में आता है और शुद्ध होने के बाद पुनः चक्कर लगाता है। साँस द्वारा हम अशुद्ध हवा बाहर निकालते हैं और बाहर से आक्सिजन भीतर लेते हैं जिससे रक्त शुद्ध होता है। यह क्रिया बराबर जारी रहती है। इसी के ऊपर मनुष्य का जीवन निर्भर है। पानी में डूबने से हम इसलिए मर जाते हैं कि न तो हम दूषित हवा को बाहर निकाल सकते हैं और न ताजी हवा पा सकते हैं।

गोता लगाने वाले जब पानी में पैठते हैं तो उन्हें ट्यूब द्वारा बाहर से ताजी हवा मिलती है। इसी कारण वे पानी में देर तक ठहरते हैं। यह अनुभव से सिद्ध हो चुका है कि हवा के बिना मनुष्य पाँच मिनट से अधिक जिन्दा नहीं रह सकता है। बच्चों की मृत्यु हमें अधिक सुनाई पड़ती है। इसका मुख्य कारण उनकी अनभिज्ञ मातायें हैं जो उन्हें ताजी हवा में नहीं रखती हैं।

हम लोग अशुद्ध हवा के उसी प्रकार विरुद्ध हैं जिस प्रकार गन्दे पानी और भोजन के; लेकिन पानी और भोजन की अपेक्षा अशुद्ध हवा के अधिक विरुद्ध हैं। चाहे हम प्यास से मर ही क्यों न जायँ, लेकिन दूसरे की कुल्ली किये हुए पानी को कभी भी काम में न लायँगे। लेकिन दुख की बात यह है कि हम शुद्ध हवा की ओर ध्यान नहीं देते। हम प्रत्यक्ष वस्तु की पूजा करते हैं, लेकिन अप्रत्यक्ष एवं लाभदायक वस्तुओं पर ध्यान ही नहीं देते। बहुत से आदमी एक साथ सोते हैं लेकिन जो विषैली हवा उस कमरे में गुंजी रहती है उसका हम तनिक भी ध्यान नहीं रखते। दूसरे आदमी का जूठा पानी और जूठा भोजन पीने-खाने के पूर्व हमें अच्छी तरह सोचना चाहिए। यहाँ तक कि वे मनुष्य भी जो भूख और प्यास से मरते हों, ऐसा करने के लिए कभी भी तैयार

नहीं होंगे। लेकिन खेद! हम में से बहुत कम इसका ध्यान रखते हैं जो कि हवा हमारे अन्दर प्रवेश करती है, वह अशुद्ध तथा विषैली है। यह कैसी आश्चर्य की बात है कि कई मनुष्य घंटों एक साथ तंग कमरे में सोते हैं, और एक दूसरे की दूषित हवा अपने अन्दर लेते हैं! सौभाग्य से हवा एक ऐसी चीज है जो छोटे से छोटे रास्ते से भी तंग तथा बन्द कमरे में कुछ न कुछ प्रवेश करती ही रहती है।

अब हमें विदित हो गया कि क्यों हम लोग निर्बल और रोग ग्रसित हैं। अशुद्ध हवा ही इसका मूल कारण है कि आज ९९ प्रतिशत लोग रोगी हैं। रोग से बचने का सबसे अच्छा उपाय खुली हवा है। इसकी तुलना में डाक्टर कुछ नहीं हैं। अशुद्ध वायु से फेफड़े खराब हो जाते हैं और इसी की खराबी से राज-यक्ष्मा का रोग होता है, जैसे कि खराब कोयले से इञ्जिन खराब हो जाता है। अतः डा० की राय है कि राजयक्ष्मा के रोगी को २४ घंटा खुली और ताजी हवा में रखना चाहिए। यही सबसे उत्तम औषधि है।

फेफड़ों के अतिरिक्त शरीर के छोटे छोटे छिद्रों द्वारा भी शरीर में हवा प्रवेश करती है। हमें यह जानना आवश्यक है कि हवा कैसे शुद्ध रह सकती है। इस बात को कम लोग महसूस करते हैं कि गन्दे पाखाने बहुत हानिप्रद हैं। कुत्ते और बिल्ली भी जमीन खुरच कर टट्टी करते हैं और उसे मिट्टी से ढँक देते हैं। जहाँ पर आधुनिक ढंग के पाखानों का अभाव है वहाँ हमें भी ऐसा ही करना चाहिये। एक टीन में राख या मिट्टी भर कर मल-मूत्र पर डालने के लिए रखनी चाहिये। इससे यह लाभ होगा कि मक्खियाँ उस पर न बैठ सकेंगी और न गन्दगी फैला सकेंगी।

हमें पाखाने की सफाई पर स्वयं ध्यान रखना चाहिए और यदि हो सके तो स्वयं साफ करना चाहिए। जो मल हमारे शरीर

से निकलता है उसे दूर फेंकते न हिचकना चाहिये। हो सके तो उसे गड्ढा खोदकर ढँक देना चाहिये। खुले स्थान में तो स्वयं गड्ढा खोदकर उसे ढँकना चाहिये।

हम बहुधा जहाँ-तहाँ पेशाब करके हवा को खराब कर देते हैं। इस बुरी आदत का परित्याग कर देना चाहिये। यदि इसके लिए उचित प्रबन्ध न हो सके तो हमें घर से दूर सूखी मिट्टी डाल देनी चाहिये

मल को अधिक गहराई में नहीं गाड़ना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से उस पर सूर्य्य की किरणें नहीं पहुँच पायेंगी और इसके अलावा वह जमीन के नीचे बहने वाले पानी को भी गन्दा कर देगा।

निवास स्थान या उसके इर्द-गिर्द थूकने की आदत भी बहुत खराब है। राजयक्ष्मा रोग से ग्रसित मनुष्य के थूक से जो कीड़े उत्पन्न होते हैं, वे बहुत ही भयानक होते हैं। विषैले कीड़े हवा के द्वारा दूसरे मनुष्य के शरीर में चले जाते हैं और उसे भी रोगी बना देते हैं। थूकने के लिये घर में एक खास बर्तन रखना चाहिये। घर के बाहर सड़कों पर, सूखी जमीन पर थूकना चाहिये, ताकि कोई हानि न हो। डा० की राय है कि राजयक्ष्मा के रोगी को पीकदान में जहर डालकर थूकना चाहिये, क्योंकि यदि वह सूखी जमीन पर भी थूकता है तो कीड़े धूल के सहारे हवा में मिल जायेंगे। जहाँ-तहाँ थूकने की आदत बहुत गन्दी और हानिकारक है।

अक्सर लोग सड़े खाद्य पदार्थ या ऐसे ही अन्य सामग्री को जहाँ चाहते हैं फेंक देते हैं जो सड़कर हवा को दूषित कर देती है। यदि ऐसी चीजें जमीन में गाड़ दी जायँ तो हवा दूषित होने से बच जाय और साथ ही जमीन को कुछ खाद भी प्राप्त हो जाय। वास्तव में कोई भी सड़ी गली चीज खुली हवा में न

छोड़नी चाहिए। ऐसा करने के लिए हमें अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं है। केवल थोड़ी सी सावधानी से यह काम हो सकता है।

अब इस बात को हम लोग समझ गये कि स्वयं हम लोगों की कुछ आदतें हवा को दूषित कर देती हैं अब इसको स्वच्छ रखने के लिये हमें क्या सावधानी करनी चाहिये। हम पीछे लिख चुके हैं कि साँस नाक द्वारा लेना चाहिए, मुँह से नहीं। उचित रीति से साँस लेना बहुत कम लोग जानते हैं। बहुतेरे मुँह द्वारा साँस लेते हैं जो बहुत हानिकारक है। साँस लेने से यदि बहुत ठंडी हवा अन्दर प्रवेश करती है तो हमें ठंड लग जाती है और अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त मुँह से साँस लेने से हवा में मिले मिट्टी के कण फेफड़ों में पहुँच कर बहुत हानि पहुँचाते हैं। जैसे कि नवम्बर के दिनों में लंडन में जो धुँआ बड़ी-बड़ी चिमनियों से निकलता है वह कुहरे में मिलकर एक पीला पदार्थ पैदा करता है। इसमें कालिख मिला रहता है जो वहाँ के मुँह से साँस लेने वाले आदमियों के थूक में देखा जाता है। जो स्त्रियाँ नाक से साँस नहीं लेतीं इससे बचने के लिये मुँह पर नक़ाब डाले रहती हैं जो उनकी रक्षा करता है। यदि इन नक़ाब को सावधानी से देखा जाय तो उन पर छोटे-छोटे कोयले के कण लगे हुए मिलेंगे। हमारे नाक के अन्दर ऐसे ईश्वरीय पर्दे हैं जो उन्हें फेफड़ों तक जाने से रोक देते हैं। अतः हमें सर्वदा नाक ही से साँस लेना चाहिए। यह कोई कठिन कार्य नहीं है। अगर हम लोग अपने मुँह का सिवाय बातचीत करते वक्त छोड़ सर्वदा बन्द रखें। जिनको आदत मुँह खोलकर सोने की है उन्हें अपने मुँह पर पट्टी लगाकर सोना चाहिए ताकि उन्हें नाक से साँस लेना पड़े। उन्हें सुबह शाम खुली हवा में बीस-बीस लम्बी साँस लेना चाहिए। सभी आदमी

इस साधारण व्यायाम को कर सकते हैं और थोड़े ही दिन बाद यह देख सकते हैं कि उनका सीना कितना चौड़ा और मज़बूत होता जाता है। दो ही महीने बाद इस बात का अनुभव होगा कि उनका सीना पहले की अपेक्षा कुछ अधिक चौड़ा हो गया है। सैंडो की कसरत का यही रहस्य है।

हमें सदा स्वच्छ हवा में साँस लेने की आदत डालनी चाहिए। हम लोग बहुधा दिन-रात किसी बन्द कमरे में पड़े रहते हैं। हमारे अन्दर यह एक बुरी आदत है। जहाँ तक सम्भव हो हमें खुली हवा में रहना चाहिए तथा बारंडा में सोना चाहिए। कमरे के दरवाजे और खिड़कियों को सर्वदा खोलकर सोना चाहिए। हवा हमारी दिन भर की खुराक है, अतः हमें ठंड से नहीं डरना चाहिए। उन लोगों को ठंड लगने की सम्भावना है जिनकी आदत बन्द कमरे में सोने की है। लेकिन अभ्यस्त हो जाने पर उनकी यह बुरी आदत भी जाती रहेगी।

यूरोप में आज-कल राजयक्ष्मा के रोगियों के लिये इस ढंग का कमरा बनाया गया है कि उसमें सदा स्वच्छ हवा प्रवेश करती रहे। हम लोग जानते हैं कि हिन्दुस्तान में कभी कभी भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसका मुख्य कारण दूषित हवा से स्वाँस लेना ही है। इस बात पर विश्वास रखना चाहिए कि कोमल-से-कोमल शरीर वाला मनुष्य भी ताज़ी और ठण्डी हवा में साँस लेने का अभ्यस्त हो सकता है। यदि हम सदा स्वच्छ हवा में साँस लेने की आदत डालें, तो अपने को बहुतेरे भयंकर रोगों से बचा सकते हैं।

खुले मुँह सोना भी उतना ही आवश्यक है जितनी खुली हवा में स्वाँस लेना। हम लोगों में से बहुतों की आदत मुँह ढक कर सोने की है। ऐसा करने से स्वयं उनके अन्दर की निकली

हुई दूषित हवा पुनः उनके साँस से अन्दर प्रवेश करती है। यह बुरी आदत है और श्वाँस के सिद्धान्त के विरुद्ध है।

यदि हमें जुकाम हुआ हो, तो हम सर को ढँक सकते हैं लेकिन नाक को सदैव खुला ही रखना चाहिए। हवा और रोशनी में घनिष्ट सम्बन्ध है। दोनों की समान आवश्यकता है। इसी कारण अंधेरे स्थान को नरक कहते हैं। जहाँ रोशनी नहीं जाती वहाँ की वायु स्वच्छ नहीं रह सकती। यदि हम लोग किसी बन्द स्थान में प्रवेश करें, तो शीघ्र ही दूषित वायु का अनुभव करने लगेंगे। हम लोग अन्धेरे में नहीं देख सकते। इससे प्रकृति की यह इच्छा है कि हम लोग रोशनी में रहें। अन्धियारी की हमें जितनी आवश्यकता है, प्रकृति स्वयं हमें रात में दे देती है। फिर भी बहुत लोग जमीन के नीचे बने कमरों में जहाँ रोशनी और हवा उचित मात्रा में नहीं पहुँच पाती, गर्मियों में रहने के आदि हैं। ऐसे लोग हवा और रोशनी से वंचित होकर सर्वदा कमजोर बने रहते हैं।

आज-कल यूरप में बहुतेरे डाक्टर ऐसे हैं जो रोगियों के वायु और धूप के प्रयोग से चिकित्सा करते हैं। लाखों आदमी हवा और सूर्य की किरणों द्वारा आराम किये जाते हैं। इसलिये हमें अपने कमरे के दरवाजों और खिड़कियों को खुला रखना चाहिए, ताकि स्वच्छ हवा उसमें प्रवेश करती रहे। पाठकगण यह प्रश्न कर सकते हैं कि जो लोग खान के अन्दर काम करते हैं, उनके ऊपर क्यों नहीं असर पड़ता ?

जो मनुष्य इस विषय को अच्छी तरह जान गया है वह ऐसा प्रश्न कदापि नहीं करेगा। हमें अच्छा से अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त करना चाहिए और जैसे-तैसे स्वास्थ्य पर संतोष नहीं करना चाहिए। यह मानी हुई बात है कि कम हवा और कम रोशनी मनुष्य को रोगी बना देते हैं। शहर के रहने वाले देहात के

रहने वालों की अपेक्षा अधिक कोमलांग होते हैं; इसका कारण यही है कि शहर वालों को कम हवा और कम रोशनी मिलती है। इससे सिद्ध होता है कि हवा और रोशनी स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक हैं अतः प्रत्येक व्यक्ति को इन दोनों चीजों का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

४—जल

हवा के बाद जल का नम्बर आता है। जीवन के लिए हवा की भाँति पानी की भी अत्यन्त आवश्यकता है। हवा के बिना मनुष्य चन्द मिनटों से अधिक जिन्दा नहीं रह सकता, लेकिन पानी के बिना कुछ दिनों तक जिन्दा रह सकता है। भोजन के बिना मनुष्य केवल पानी के सहारे बहुत दिनों तक रह सकता है। हमारे खाद्य-पदार्थों में सत्तर प्रतिशत पानी का अंश है और इसी अनुपात से हमारे शरीर में भी पानी का अंश है।

हमारे लिए पानी एक अत्यन्त आवश्यक वस्तु है, फिर भी उसकी रक्षा हम कम करते हैं। हवा और जल के सम्बन्ध में असावधानी रहने ही से हमें कितने भयंकर रोग आ घेरते हैं। गन्दा पानी पीने से बहुधा पथरी का रोग होता है।

पानी दो तरह से गन्दला हो सकता है। या तो उसके निकलने का स्थान गन्दा हो या हम लोग उसे गन्दा करें। यदि पानी गन्दी जगह से निकलता हो तो हमें नहीं पीना चाहिए; प्रायः हम लोग ऐसा पानी पीते हैं। लेकिन जो पानी हम स्वयं गन्दा करते हैं उसे पीते हम जरा भी नहीं हिचकते। नदी का पानी सबसे निर्मल समझा जाता है, यद्यपि हम लोग उसमें कूड़ा-करकट फेंकते हैं और गन्दे कपड़े धोते हैं। हमें नियम बना लेना चाहिए कि हम उस पानी को भी न पीयें, जिसमें लोग स्नान करते हैं। नदी की

ऊपरी भाग का पानी पीने के लिये ही रख छोड़ना चाहिये; और नीचे का भाग कपड़ा धोने और स्नान करने के लिए। जहाँ ऐसा प्रबन्ध न हो वहाँ पीने का पानी हमें बालू खोद कर लेना चाहिए। यह पानी बहुत निर्मल होता है; क्योंकि बालू पानी को छानकर स्वच्छ कर देता है! कुएँ का पानी बहुधा हानिकारक होता है। कुआँ जब तक चारों तरफ से सुरक्षित न हो उसका पानी नहीं पीना चाहिए।

कभी-कभी चिड़ियाँ पानी में गिर कर मर जाती हैं क्योंकि वे कुएँ के भीतर अपना घोंसला बनाती हैं। पानी भरने वालों के पांव का कीचड़ भी पानी में गिर कर उसे गन्दा करता है। इन्हीं सब कारणों से कुएँ का पानी पीने में हमें सावधानी रखनी चाहिए। बहुधा टब का पानी भी गन्दा हो जाता है। उसे बराबर साफ करने और ढँक कर रखने से पानी पीने योग्य हो सकता है। हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि जिस तालाब या कुएँ का पानी हम पीते हैं वह स्वच्छ हो। बहुत कम लोग पानी को स्वच्छ रखने का प्रयत्न करते हैं। पानी को स्वच्छ रखने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि उसे उबाल लिया जाय और ठंडा होने पर फिर किसी साफ तथा मोटे कपड़े से किसी दूसरे बर्तन में छान कर रख दिया जाय। हमारा काम यहीं समाप्त नहीं हो जाता। हमें यह महसूस करना चाहिये कि इस विषय में हमारी जिम्मेदारी हमारे भाइयों के लिये और भी है। जनता के प्रयोग का जल हमें कभी गन्दा नहीं करना चाहिये। जो पानी पीने के लिए है, उसमें हमें कभी कपड़ा नहीं धोना चाहिए। नदी के किनारे हमें कभी शौच नहीं होना चाहिए। न तो हमें वहाँ मुर्दा ही जलाना चाहिये और न जली हुई राख पानी में बहाना चाहिये।

इतना प्रयत्न करने पर भी स्वच्छ पानी मिलना कुछ कठिन

सा है, क्योंकि इसमें त्तार, घास के टुकड़े और अन्य सड़ी गली चीजें मिली होती हैं। वर्षा का पानी सबसे स्वच्छ होता है, लेकिन हमारे पास पहुँचते-पहुँचते वह भी वायु मण्डल में उड़ते हुए गन्दे पदार्थों के मिल जाने से गन्दा हो जाता है।

अधिकांश मनुष्य इस बात को नहीं जानते हैं कि पानी दो प्रकार का होना है--हल्का और भारी। भारी पानी वह है जिसमें एक प्रकार का नमक मिला रहता है। इस कारण उस पानी से साबुन में फेन नहीं उठता और भोजन उसमें अच्छी तरह नहीं पकता। इसका स्वाद खारा होता है, हल्का पानी मीठा और स्वाद-हीन होता है। कुछ लोगों की धारणा है कि हल्के पानी की अपेक्षा भारी पानी, नमक का मिश्रण होने के कारण, लाभदायक होता है। लेकिन अनुभव से यह पता लगा है कि भारी पानी पाचन-शक्ति को कम करता है। हल्का पानी पांचनशक्ति को बढ़ाता है वर्षा का पानी हल्के पानी से भी अच्छा होता है। अतः पीने के लिये सर्वोत्तम है। भारी पानी यदि डेढ़ घन्टे तक उबाला जाय तो वह भी हल्का हो जाता है और तब इसे छानकर पी सकते हैं।

यह प्रश्न हमेशा पूछा जाता है कि मनुष्य को कब और कितना पानी पीना चाहिये? इसका उचित उत्तर यही है कि जब प्यास लगे तब पानी पीना चाहिये। भोजन के मध्य में भी पानी पिया जा सकता है या भोजन के बाद शीघ्र ही पीना चाहिये। पानी के सहारे भोजन नहीं निगलना चाहिये यदि भोजन स्वयं नीचे नहीं उतरता हो, तो यह समझना चाहिये कि या तो वह अच्छी तरह मुँह से कुचला नहीं गया है, या पेट इसे चाहता ही नहीं है।

साधारणतः पानी पीने की आवश्यकता नहीं है। जैसे कि पहले बतलाया जा चुका है कि हमारे भोजन में पानी का अंश

अधिक है; और भोजन पकाते समय भी हम उसमें पानी मिलाते हैं। तब हमें प्यास क्यों लगती है? उन लोगों को पानी की आवश्यकता नहीं पड़ती, जिनके भोजन में मसाला और प्याज न मिला हो। जिन्हें अधिक प्यास लगती है, वे अवश्य किसी-न-किसी रोग के शिकार हैं।

दूसरे को पानी पीते देख प्यास न होने पर भी हमारी इच्छा पानी पीने को होती है। इसी बुनियाद पर हम उस पानी को पीते भी हैं, क्योंकि दूसरों को पीते देखते हैं। इसके लिये वायु के परिच्छेद में, पहले ही कहा जा चुका है। हमारे खून में स्वयं इतनी शक्ति है, जो बहुतेरे विषों को नाश कर देती है। लेकिन उस खून की शुद्धि की उसी प्रकार आवश्यकता पड़ती है, जिस प्रकार एक बार प्रयोग करने के बाद तलवार को साफ़ करने की आवश्यकता होती है। यदि हम लोग गन्दले पानी को बराबर पीते रहें, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, कि हम लोग का खून अन्त में विषैला हो जाय।

५—भोजन

भोजन के विषय में नियम निर्धारित करना कठिन ही नहीं, वरन् एक जटिल समस्या है। इसमें मतभेद है कि कब, कितना और किस प्रकार का भोजन खाना चाहिए। मानव प्रकृति इस सम्बन्ध में इतनी भिन्नता रखती है कि एक ही पदार्थ एक के लिए गुणकारी और दूसरे के लिए हानिकारक सिद्ध होता है।

यद्यपि यह कहना कठिन है कि किस प्रकार का भोजन ग्राह्य है। फिर भी इस सम्बन्ध में कुछ विचार करना अति आवश्यक है; क्योंकि बिना भोजन किए मनुष्य जीवित नहीं रह सकता।

भोजन प्राप्ति के लिए हमें तरह तरह की कठिनाइयाँ, एवं दुःखों का सामना करना पड़ता है; लेकिन यह मानी हुई बात है कि ९९ प्रतिशत मनुष्य केवल स्वाद के लिए खाते हैं और वे वैसे स्वादयुक्त भोजन के अन्तिम परिणाम को नहीं सोचते। कुछ लोग पाचन-शक्ति को बढ़ाने के लिए औषधियों का भी सेवन करते हैं, ताकि वे अधिक मात्रा में खा सकें। कुछ लोग तो इतना अधिक भोजन कर लेते हैं कि उल्टी तक करने लग जाते हैं और फिर भी उसी प्रकार का भोजन करते हैं। कुछ इतना अधिक खा लेते हैं कि दो-तीन दिन तक फिर भोजन नहीं करते। कभी-कभी यह भी सुनने में आता है कि कितनों की मृत्यु अधिक भोजन कर लेने से हुई है। मैं अपने निजी अनुभव की बात कहता हूँ कि जब कभी मुझे अपने पिछले दिनों की बात याद आती है तो मैं हँस पड़ता हूँ और लज्जित हो जाता हूँ। उन दिनों मैं सुबह चाय पीता था, दो-तीन घण्टे बाद जलपान और एक बजे दिन को भोजन करता था। फिर तीन बजे चाय पीता था और ७-८ बजे के बीच रात को भोजन करता था। उन दिनों मेरी अवस्था दयनीय थी। मैं काफी मोटा था, फिर भी औषधियों की बोतलें पास ही रहती थीं। अधिक खाने के लिए मैं सदा पचानेवाली औषधि का सेवन करता था और पुष्टकारक औषधि भी खाता था। लेकिन उन दिनों आज के तिहाई भी काम करने की शक्ति और साहस नहीं था। यद्यपि वे मेरे युवाकाल के दिन थे। ऐसा जीवन, सचमुच दयनीय ही नहीं बल्कि विचार किया जाय तो पापमय तथा घृणित है।

मनुष्य केवल भोजन करने ही के लिए नहीं पैदा हुआ है और न उसे केवल भोजन के लिए ही जीवित रहना चाहिए। उसका प्रधान कर्तव्य तो अपने बनाने वाले (ईश्वर) को पहचानना तथा उसकी सेवा करना है। लेकिन चूँकि ये काम इस

शरीर ही से किये जा सकते हैं, तथा करने आवश्यक हैं, अतः उसे कायम रखने के लिए भोजन करना आवश्यक है। पहलवान लोग भी इसे स्वीकार करते हैं कि हमें उतना ही भोजन करना चाहिए जितना स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद हो।

अब पशु और पक्षियों का जीवन देखिये। वे कभी स्वाद के लिए नहीं खाते और न इतना अधिक भोजन ही करते हैं, कि उनका पेट फटने लगे। वे केवल अपनी भूख मिटाने भर ही खाते हैं। जो कुछ प्रकृतिदेवी उन्हें देती है, वे वही खाते हैं वे अपना भोजन पकाते नहीं हैं। क्या यह सच हो सकता है कि केवल मनुष्य ही पेट की उपासना करे? क्या यह सच है कि ऐसा कर केवल मनुष्य ही सदा रोगों का शिकार बने? वे पशु-पक्षी जो स्वतंत्रता-पूर्वक विचरते हैं, कभी भूख से नहीं मरते। उनके लिए स्वादिष्ट तथा रूखा-सूखा भोजन में कोई अन्तर नहीं है वे जीव जो दिन में कई बार भोजन करते हैं और वे जीव जिन्हें एक बार भी कठिनता से भोजन मिलता है—केवल मानव-समाज ही में मिलते हैं। फिर भी हम मनुष्य अपने जीवन को उत्तम समझते हैं। वास्तव में वे मनुष्य जो अपना समय केवल पेट-पूजा ही में गँवाते हैं, उन पशु-पक्षियों से कहीं बदतर हैं।

ध्यानपूर्वक विचार करने से हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि सभी तरह के पाप, झूठ बोलना, ठगना, चोरी करना इत्यादि सब पेट-देव की भेंट ही के लिए किए जाते हैं। केवल वे ही मनुष्य अपने इन्द्रियों को वश में कर सकते हैं, जो अपनी जिह्वा को स्वादिष्ट भोजन से वंचित रखते हैं। यदि हम लोग झूठ बोलें, चोरी करें, ठगपन करें तो समाज की दृष्टि में घृणित समझे जाते हैं, लेकिन जो सर्वदा स्वादिष्ट भोजन के पीछे पड़े रहते हैं, उनकी ओर कोई ध्यान नहीं देता। पेट-देव के लिए आज तक जो भी घृणित कार्य किये जा रहे हैं, उनकी ओर कोई ध्यान नहीं

देता। सभी सभ्य समाज एक झूठे चोर का बहिष्कार कर देगा; लेकिन उसका नहीं, जो अपना जीवन भोजन करने ही के लिए मान बैठा है तथा जो हद से ज्यादा भोजज करता है। चूँकि हम सभी पेट-देव के ऐसे ही उपासक हैं, अतः इसे कोई पाप नहीं समझते। जैसे एक डकैत जो डकैतों के गाँव में बसा है कभी डकैत नहीं समझा जाता। व्याह या दूसरे किसी त्यौहार के अवसर पर अच्छा और स्वदिष्ट भोजन तैयार करना हम अपना मुख्य धर्म समझते हैं, यहाँ तक कि श्राद्ध कर्मों में भी ऐसा करते नहीं संकोच करते। ऐसे मौके पर यदि कोई मेहमान आ जाता है, तो उसको मिठाइयों की भेंट करते हैं। यदि समय-समय पर हम अपने सम्बन्धियों को निमंत्रित नहीं करते हैं, या उनके यहाँ दिये गये भोज में सम्मिलित नहीं होते हैं, तो हम उनकी नजरों में गिर जाते हैं। और यदि निमंत्रित कर हम उनके आगे स्वादयुक्त भोजन नहीं रखते, तो कंजूस समझे जाते हैं। हम प्रायः ऐसी धारणा करते हैं कि छुट्टी के दिन अवश्य स्वादिष्ट भोजन बनना चाहिए। वास्तव में यह एक बड़ा पाप है इसे करने में हम अपनी बुद्धिमत्ता समझते हैं। हम अपने को ऐसी भीषण परिस्थिति से कैसे बचा सकते हैं। कम-से-कम प्रत्येक मनुष्य को स्वास्थ्य-सुधार की दृष्टि से इसके ऊपर विचार करना आवश्यक है।

इस विषय पर अब हम लोग दूसरे ढंग से विचार करें। संसार में हम देखते हैं कि प्रकृति देवी ने मनुष्य, पशु-पक्षी और कीड़े-मकोड़े सभी जीवों के लिए बहुतायत से खाद्यपदार्थ पैदा किया है। यह प्रकृति का अनादि नियम है कि उसके राज्य में सब काम नियम बद्ध होते हैं। न तो वह कभी सोती है न अपने नियम से विचलित होती है, और न उसमें आलस्य है। उसके सभी काम छोटे या बड़े नियमानुसार होते रहते हैं। यदि हमलोग अपने जीवन को प्रकृति के नियमानुसार बनावें तो हमें

अनुभव होगा, कि इस संसार में भूख से पीड़ित होकर अधिक लोग नहीं मरते। चूँकि प्रकृति सभी जीवों के लिए काफी भोजन उत्पन्न करती है, इसलिए यदि हम अपने हिस्से से अधिक भोजन करते हैं तो ऐसा कर दूसरों को भोजन से वञ्चित करते हैं। क्या यह सच नहीं कि बादशाह एवं धनियों के भोजनालय में उनकी आवश्यकता से कहीं अधिक भोजन तैयार किया जाता है, और ऐसा कर बहुतेरे गरीबों का भोजन छीन लिया जाता है। अब यदि गरीब भूखों मरते हैं, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? इसी प्रकार हम लोग भी अधिक भोजन करके दूसरों का भाग छिनते हैं एवं भोजन भी स्वादिष्ट ही करते हैं। ऐसी अवस्था में कोई कारण नहीं कि हमारा स्वास्थ्य खराब न हो।

इसके पहले कि हम लोग इस बात का निर्णय करें कि किस किस्म का भोजन हमारा आदर्श भोजन हो सकता है। हमें यह विचार कर लेना चाहिये कि किस प्रकार का भोजन हमारे स्वास्थ्य के अनुकूल है और किस प्रकार का प्रतिकूल। "भोजन" शब्द के अन्तर्गत वे सभी चीजें हैं जो मुँह में खाये जाते हैं जैसे कि शराब, भंग, अफीम, तम्बाकू, चाय, कहवा, कोकीन, मसाले, चटनी इत्यादि। कुछ निजी एवं कुछ दूसरों के अनुभव से मेरा विश्वास है कि ये सभी वस्तुएँ हानिकारक हैं।

शराब, भंग, अफीम दुनिया के हरएक धर्म से बहिष्कृत हो गये हैं। यद्यपि उससे परहेज करने वालों की संख्या अभी कम है। शराब ने तो कितने घरों का नाश कर दिया है शराबी की अक्ल मारी जाती है, यहाँ तक कि वह स्त्री और कन्या में भी भेद नहीं कर पाता। उसका जीवन भारस्वरूप हो जाता है। शराबी बहुधा कीचड़ों की मोरियों में पाये जाते हैं। बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी शराब के नशे में बेहोश हो जाता है। उसका दिमाग कमजोर हो जाता है और वह कोई काम नहीं कर सकता। कुछ

का अनुकरण करेंगे। खादी-प्रेमी यह जान कर
ो कि सेठ लालचन्द और उनकी धर्मपत्नी पक्के
हैं और दोनों वर-वधू भी खादी में पूर्ण श्रद्धा

विवाह का तत्त्व ज्ञान

[थर्स्टन नामक अमेरिकन लेखक की 'विवाह का तत्वज्ञान, नामक पुस्तिका के मुख्य अंश का सारांश नीचे दिया जारहा है।

पुस्तक के प्रकाशक का कहना है कि लेखक महोदय अमेरिका की सेना में १० वर्ष नौकर रहे और ' मेजर ' के पद तक पहुँच कर सन् १९१९ में नौकरी छोड़ कर निवृत्त हुए, तब से वे न्यूयार्क में रहते हैं । इन १८ वर्षों में उन्होंने जर्मनी, फ्रांस, फिलिपाइन्स-द्वीप-समूह, चीन और अमेरिका में विवाहित दंपतियों की स्थिति का खूब अध्ययन किया है। इस अभ्यास के मूल में लेखक की अपनी अवलोकन शक्ति तो है ही किन्तु इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रसूति-शास्त्र में निपुण तथा स्त्री-रोग चिकित्सक सैकड़ों डाक्टरों से पत्र-व्यवहार भी किया। लेखक ने इसके अतिरिक्त सेना में भर्ती होने वाले उम्मेदवारों की शारीरिक योग्यता की जांच से आंकड़ों तथा सामाजिक आरोग्य-रक्षक मंडलों के इकट्ठा किये दूसरे आंकड़ों का भी ठीक उपयोग किया है। लेखक के सैकड़ों डाक्टरों से पूछे हुये प्रश्न और उनके उत्तर सुनिये]

यह बतला देना उचित है कि चाय, काफी, कोकीन ये सभी वस्तुएँ हानिप्रद हैं; यद्यपि मुझे मालूम है कि मेरा इस बात का समर्थन बहुत कम लोग करेंगे। इन चीजों में एक प्रकार का विष होता है। चाय और कहवे में यदि दूध और खाँड़ न मिलाई जाय, तो इसमें कोई भी पोषक पदार्थ न रह जायगा। बार-बार के अनुभव से यह मान लिया गया है कि इन वस्तुओं में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है जो खून को बढ़ा सके। कुछ दिनों पहले इसका प्रयोग हम लोग किसी विशेष अवसर पर किया करते थे, परन्तु आज यह एक सामान्य प्रयोग हो गया है।

सौभाग्यवश कोकीन की अधिक कीमत होने से साधारण व्यक्ति उसका इस्तेमाल नहीं कर सकते। फिर भी धनिकों के घर में इसका प्रयोग होता रहता है। चाय, काफी एवं कोकीन ये सभी पाचन-शक्ति को मन्द करते हैं। ये कितने हानिकारक होते हैं, इस बात से सिद्ध हो जाता है कि जो इसे एक बार भी प्रयोग करता है, उसे इसके बिना नहीं रहा जाता। पहले मुझे स्वयं सुस्ती मालूम होती थी यदि मैं नियमित समय पर चाय नहीं पीता था। एक बार किसी विशेष अवसर पर करीब चार-सौ स्त्रियाँ और बच्चे इकट्ठे थे। प्रबन्धकर्त्ता उन्हें चाय नहीं देना चाहते थे। जो स्त्रियाँ वहाँ एकत्रित थीं उन्हें चार बजे चाय पीने की आदत थी। अधिकारियों को इस बात की सूचना दी गई कि यदि उन्हें नियमित समय पर चाय नहीं दी गई, तो वे चलने-फिरने तक से लाचार हो जायँगी। अतः अधिकारियों को अपनी प्रतिज्ञा भंग करनी पड़ी। चाय बनने में कुछ देर हो गई, जिस वजह से वहाँ बड़ा ही हल्ला हुआ जो स्त्रियों के हाथ में चाय का प्याला देने ही पर शान्त हुआ। मैं इस घटना के कारण को अच्छी तरह से जानता हूँ।

दूसरा एक उदाहरण यह है कि एक स्त्री चाय पीने की बुरी

लत में पड़कर अपनी पाचन-शक्ति खो बैठी थी, लेकिन चाय को छोड़ते ही उसका स्वास्थ्य सुधरने लगा। इंगलैंड में पैटर-सी म्युनिसिपैल्टी का रहने वाला एक डाक्टर यह कहा करता था कि वहाँ पर हजारों स्त्रियों का सिर चकराता है जिसका कारण चाय पीने की अधिकता है। मेरा स्वयं ऐसा कई आदमियों से परिचय है, जो चाय पीने के कारण अपना स्वास्थ्य खो बैठे हैं।

यह ठीक है कि कहवा कफ को कम करता है, लेकिन खून को उत्तेजित और पतला कर देता है। जो व्यक्ति कहवे को इस आधार पर पीते हैं कि उनका कफ इससे दबता है, इ हें मेरी राय में अदरक के रस का प्रयोग करना ठीक है। लाभदायक होने की अपेक्षा कहवा अधक हानिप्रद होता है। जब खून इससे अधिक उत्तेजित होकर विषैला हो जाता है तो प्राण निकलने में कोई आश्चर्य नहीं।

कोकीन भी उतना ही हानिप्रद है जितना कि कहवा और चाय। इसमें एक प्रकार का विष होता है जो चमड़े के सूराखों को बन्द कर देता है। जो लोग सदाचार के पक्ष में हैं उन्हें यह बात अवश्य याद रखनी चाहिए कि चाय, कहवा एवं कोकीन उन मजदूरों द्वारा तैयार किये जाते हैं जो एक प्रकार के गुलाम ही हैं। अगर हम लोग स्वयं अपनी आँखों उनके साथ किये जाने वाले बर्तावों को देखें, तो शायद हम कभी फिर उनका उपभोग करने को नहीं तैयार होंगे। सचमुच यदि हम जाँच करें, तो पता चलेगा कि हम लोगों के ९० प्रतिशत खाद्यपदार्थ इसी तरीके से तैयार किए जाते हैं। कहवा, चाय और कोकीन के बदले पीने के लिए एक दूसरी वस्तु इस तरीके से तैयार कर सकते हैं जिसे अच्छे-से-अच्छे पीने वाले चाय, कहवा और उसमें कुछ अन्तर नहीं पायेंगे। एक सेर अच्छा गेहूँ एक कड़ाही में रख कर आग

पर भूना जाय, जब तक कि वह लाल न हो जाय। उसके बाद उसे खूब महीन पीस लिया जाय। एक चम्मच मैदे को प्याले में रखकर खौलता हुआ पानी उसमें छोड़कर चन्द मिनट तक उसको आग पर रखा जाय। उसके बाद उसमें दूध और शक्कर मिला-कर उसका प्रयोग किया जाय। यह कहवे से कहीं सस्ता, स्वादिष्ट तथा लाभप्रद होता है। जो ऐसा चूर्ण बनाने के परिश्रम से बचना चाहते हों, उन्हें अहमदाबाद के सत्याग्रह आश्रम से इसे लेना चाहिये।

भोजन के ख्याल से मानव-समाज तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। सबसे बड़ा भाग वैष्णव (जो मांस नहीं खाता)। इस भाग में भारत के अलावा यूरोप, जापान और चीन के भी कुछ मनुष्य हैं। इनमें कुछ धर्म के भाव से मांस खाते हैं, और कुछ यदि मिल जाय तो खुशी से खाते हैं। इनमें इटालियन, आयरिस, रूस के गरीब किसान और चीन के सब मनुष्य शामिल हैं। दूसरे भाग में वे लोग हैं जो मिश्रित भोजन खाते हैं। इनमें इंगलिस्तान के पुरुष, चीन, जापान के धनी पुरुष, भारत के धनी मुसलमान और धनी हिन्दू जिन्हें मांस खाने में कोई धार्मिक अड़चन नहीं। परन्तु इस भाग में पहले भाग के बराबर मनुष्य नहीं हैं। तीसरे भाग में वे मनुष्य हैं जो केवल मांसाहारी हैं। वे ठंडे देश की असभ्य जातियाँ हैं इनकी संख्या अधिक नहीं है। अब ये यूरोप की सभ्य जातियों के संसर्ग में आने से अपने भोजन के साथ शाक भी खाने लगे हैं। इस तरह मनुष्य तीन प्रकार का भोजन करता है। लेकिन हम लोगों का कर्तव्य है कि इसका विचार करें कि इन तीनों में सब से अधिक स्वास्थ्यप्रद किस भाग का भोजन है।

मनुष्य की शारीरिक बनावट को देखकर यही प्रतीत होता है कि प्रकृति ने मनुष्य को शाकाहारी बनाया है। मनुष्य और फल-

भक्षी जीवों से शारीरिक अवयवों में बहुत कम अन्तर है। उदाहरण के लिए बन्दर को लीजिये। वह मनुष्य के अग से बहुत मिलता-जुलता है, और एक फलाहारी जीव है। उसके दाँत और पेट मनुष्य के दाँत और पेट जैसे होते हैं। मांसाहारी जीव जैसे शेर, चीते वगैरह सर्वथा उससे भिन्न होते हैं। मनुष्य और तृण-भक्षी जीव, जैसे गाय वगैरह के भी कुछ अंग मिलते-जुलते हैं; लेकिन उनके जबड़े बहुत बड़े होते हैं तथा रंग-रूप में भी कुछ भिन्नता होती है। इन सब बातों के आधार पर वैज्ञानिकों का मत है कि मनुष्य का भोजन मांस नहीं और न केवल शाक ही है, बल्कि मूल-फल है।

वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि फलों के अन्दर वह सब तत्त्व पाये जाते हैं, जो मनुष्य के लिए आवश्यक हैं। केले, संतरे, खजूर, अंगूर, सेव, बादाम, मूँगफली इत्यादि में अधिक मात्रा में पुष्टिकारक तत्त्व मौजूद हैं। उनकी यह भी राय है कि भोजन को पकाना नहीं चाहिए, धूप-से पके हुए फल अत्यन्त लाभदायक होते हैं। पकाये हुए भोजन का पुष्टिकारक तत्त्व नष्ट हो जाता है। जो वस्तु बिना आग पर पकाये हम नहीं खा सकते, उसे प्रकृति ने हमारे लिए नहीं बनाया है।

यदि यह बात सत्य है तो हमें समझना चाहिए कि हम अपना बहुमल्य समय भोजन पकाने में व्यर्थ नष्ट करते हैं। यदि हम लोग बिना पकाये हुए भोजन पर रह सकते हैं, तो हमारा समय, स्फूर्ति और पैसे की बचत हो सकती है, और ये साधन सुधार के कार्यों में लगाये जा सकते हैं।

कुछ लोग ऐसा कहेंगे कि बिना पकाये हुए भोजन पर जीवन निर्वाह करने की आशा केवल मखौल है, क्योंकि ऐस आजन्म नहीं किया जा सकता। लेकिन इस समय हम इस विषय पर नहीं विचार कर रहे हैं कि सब लोग इस नियम के अनुसार चल

सकते हैं या नहीं। हम केवल यह विचार कर रहे हैं कि हमें क्या करना चाहिए।

हम लोग केवल इस बात का तर्क कर रहे हैं कि कौन-सा पदार्थ हमारा आदर्श भोजन हो सकता है ऐसा कर जब हम यह कहते हैं कि फल आदर्श भोजन है, तो हम लोग सर्वसाधारण से यह आशा नहीं करते कि वे केवल फल ही खाने लगेंगे। कहने का केवल यही अभिप्राय है कि यदि वे फल खायें तो यह उनका सबसे पुष्टिकारक एवं आदर्श भोजन होगा। इंगलैण्ड में बहुत से ऐसे आदमी मौजूद हैं जो केवल फलाहार करते हैं, और अपने अनुभव को अंकित किये हुये हैं। वे ऐसे मनुष्य हैं जो धर्म के नाम पर नहीं, बल्कि स्वास्थ्य के लिए ऐसा करते हैं। जर्मनी के एक जुस्ट नामक डाक्टर ने इस विषय पर एक बहुत बड़ी पस्तक लिखी है, और उसमें अनेक दलीलों को पेश करते हुए फलाहार के महत्व को दर्शाया है। उसने बहुत से रोगियों को फल तथा स्वच्छ वायु का सेवन करा कर आराम किया है। वह यहाँ तक कहता है कि प्रत्येक देश के मनुष्य अपने देश के फलों में अपने लिए पोषक पदार्थ पा सकते हैं। इस विषय में यदि मैं स्वयं अपना निजी अनुभव लिखूँ, तो कोई अत्युक्ति न होगी। गत छः मास से मैं फल खाकर रहता आ रहा हूँ। यहाँ तक कि दूध और मक्खन का भी परित्याग कर दिया है। मेरा मुख्य भोजन केला, चीना बादाम, खजूर, जैतून का तेल और कुछ खट्टे फल जैसे नीबू वगैरह हैं। मैं नहीं कह सकता कि मेरा यह प्रयोग कहाँ तक सफल हुआ है; लेकिन केवल छः महीने का समय किसी मुख्य उद्देश्य पर पहुँचने के लिए बहुत कम है। इतना अवश्य है कि मैं इन छः महीनों के बीच बिल्कुल नीरोग रहा हूँ जब कि दूसरे रोग ग्रसित थे। इस समय मेरी शारीरिक और मानसिक शक्ति पहले की अपेक्षा बढ़ी हुई है। मैं बड़े-बड़े बोझों का भार नहीं ले सकता; लेकिन मैं कड़े

परिश्रम को देर तक बिना थकावट के कर सकता हूँ। मैं मानसिक काम भी अधिक उत्साह और तत्परता से कर सकता हूँ। मैं बहुत से रोगियों को अच्छे परिमाण के साथ फलाहार कराता हूँ। मैं उन अनुभवों को अगले पृष्ठों में विस्तृत रूप से बतलाऊँगा। यहाँ इतना ही कह देना आवश्यक समझता हूँ कि यह मेरा निजी अनुभव है कि फल सब भोजनों में पुष्टिकारक एवं स्वास्थ्यकारक है। मैं इस बात को पहले ही कह चुका हूँ कि मेरे कहने से सभी लोग फलाहार नहीं करने लगेंगे, हो सकता है कि पाठकों में से एक भी न करे, लेकिन मैं अपना कर्त्तव्य और धर्म समझकर इस विषय पर जो कुछ अनुभव मुझे प्राप्त हुआ है उसे लिख देना उचित समझता हूँ।

यदि कोई मनुष्य फलाहार करना चाहे तो उसे बहुत सावधानी से इसे आरम्भ करना चाहिए। पहले उसे इस किताब के सभी प्रकरणों को पढ़कर उसके मुख्य-मुख्य बातों को समझ लेना चाहिए। पाठकों से मेरी यही प्रार्थना है कि वे अपना अन्तिम निर्णय शीघ्रता से न करें। जबतक कि मेरी सब बातों को न पढ़ लें। फलाहार के बाद शाकाहार और इसी में दूध भी शामिल है। शाक उतना पोषक नहीं है, जितना कि फल, क्योंकि शाक को आग पर पकाने से उसका कुछ पोषक अंश नष्ट हो जाता है। लेकिन बिना आग पर पकाये हम उसे खा नहीं सकते। आगे चलकर हम यह विचार करेंगे कि कौन सा शाक अधिक पोषक है।

गेहूँ सब अन्नों में प्रधान है। केवल गेहूँ पर मनुष्य अपना जीवन व्यतीत कर सकता है, क्योंकि इसमें पोषक तत्व समान अंश में है। इससे कई प्रकार के भोजन बन सकते हैं जो सहज ही में पच जाते हैं। मक्का और बाजरा भी उसी श्रेणी के हैं और इनकी भी रोटियाँ बनती हैं, किन्तु ये गेहूँ से कुछ नीचे दर्जे के

हैं। अब हम यह विचार करेंगे कि गेहूँ के बनाने का सबसे अच्छा तरीका कौनसा है। कल का आटा जो बाजारों में बिकता है, बिल्कुल खराब होता है, और उसमें पोषक पदार्थ बिल्कुल नहीं रहता। एक अंग्रेज डा० का कहना है कि एक कुत्ता जिसे केवल कल के आटे की रोटी खिलाई जाती थी, कमजोर होकर मर गया, और दूसरा कुत्ता जिसे दूसरा आटा खिलाया जाता था, स्वस्थ बना रहा। फिर भी स्वाद की दृष्टि से इसका माँग अधिक है। इसकी रोटियाँ कड़ी और स्वादहीन होती हैं। कभी कभी वे इतनी कड़ी हो जाती हैं कि हाथ से तोड़ना भी कठिन हो जाता है। सबसे अच्छा आटा वह है जो गेहूँ को कूट-छाँट कर चक्की में स्वयं पीसकर तैयार किया जाता है। इसका प्रयोग बिना छाने करना चाहिए। इसकी बनी रोटियाँ स्वादिष्ट और मुलायम होती हैं। पोषक होने के कारण यह देर तक ठहरती है। बाजार की रोटियाँ यद्यपि देखने में भली और आकर्षक मालूम होती हैं, लेकिन वे बिल्कुल व्यर्थ और हानिकारक होती हैं। उनमें चर्बी चुपड़ी होने के कारण हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिये समान आपत्तिजनक होती हैं गेहूँ बनाने का दूसरा तरीका यह है कि गेहूँ को दल लिया जाय, और उसमें दूध और खाँड मिलाकर पका लिया जाय। यह बहुत स्वादिष्ट तथा बल-वर्द्धक होता है।

चावल दाल, घी और दूध की तरह पुष्टकर नहीं होता। तरकारियाँ केवल स्वाद के लिए खाई जाती हैं, इनमें एक तत्व होता है जो खून को कुछ अंश में साफ करता है। लेकिन घास होने के कारण यह देर से पचता है। जो इनका अधिक व्यवहार करते हैं, उन्हें प्रायः अपच हो जाती है। इसलिये हमें तरकारी उचित परिमाण में खाना चाहिए।

हरएक दाल पचने में भारी होती है। दाल में सिर्फ यही गुण है कि जो इसे अधिक खाता है, उसे देर तक भूख नहीं लगती;

बल्कि कभी-कभी बदहजमी हो जाती है। जो कठिन परिश्रम करते हैं, वे दाल हजम कर सकते हैं, और इससे लाभ उठा सकते हैं। जो अमीरी जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हें इससे परहेज रखना चाहिये। इङ्गलैंड का एक बड़ा लेखक डा० हेग का कहना है कि दाल स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। और पेट में एक प्रकार की एसिड पैदा करती है, जिसके कारण अनेक रोग उत्पन्न होकर शरीर को असमय वृद्ध बना देते हैं। इसके लिये दलीलें पेश करने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन मैं भी उस अनुभव से सहमत हूँ। जो दाल का परित्याग नहीं कर सकते, उन्हें इसे सावधानी से खाना चाहिए।

करीब करीब सारे हिन्दुस्तान में तरह-तरह के मसाले और बघार बहुतायत से प्रयोग किये जाते हैं, जो किसी और देश में नहीं किये जाते। अफ्रीका के हब्शी लोग भी हमलोगों के मसालों से नफरत करते हैं। यदि अंग्रेज मसाले खायें, तो उनके पेट की पाचन-क्रिया बिगड़ जाती है, और उनके चेहरे पर दाग पड़ जाते हैं, जिसे मैं अपने निजी अनुभव से जानता हूँ। सच बात तो यह है कि मसाला कोई खाने की सामग्री नहीं है। लेकिन चूँकि हम लोग बहुत दिनों से इसका प्रयोग करते चले आये हैं, इसलिए उसका स्वाद हमारी इच्छा को बढ़ाता है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कि स्वाद के लिये कोई भोजन करना हानिकारक है। तब फिर यह बात कैसे हुई कि मसाले का अधिक प्रयोग होना चाहिए। प्रायः लोग यही कहा करते हैं कि पाचन-शक्ति बढ़ाने के लिए मिर्च, धनियाँ इत्यादि का प्रयोग आवश्यक है, किन्तु इससे तो नकली भूख बढ़ती है, जिसका प्रभाव शरीर पर अच्छा नहीं पड़ता। जो इन्हें अधिक खाते हैं, उन्हें बहुधा दस्त की बीमारी होती है। मुझे मालूम है कि एक युवा आदमी अधिक

मसाला खाने से अपने युवाकाल ही में मर गया। अतः इसका परित्याग सर्वथा आवश्यक है।

मसाले के विषय में जो कुछ कहा गया है, वही नमक के विषय में भी कहा जा सकता है। कितने ही इस बात को सुनकर चौंक पड़ेंगे; लेकिन यह एक अनुभव सिद्ध बात है। इङ्गलैंड में एक स्कूल है, जिसका यह मत है कि नमक मसाले से हानिकर है। जो शाक हमलोग खाते हैं, उसमें आवश्यकतानुसार नमक का हिस्सा मौजूद है, अतः ऊपर से नमक मिलाने की कोई आवश्यकता नहीं। आवश्यकता से अधिक नमक हमारे शरीर के पसीने द्वारा या और किसी दूसरे तरीके से बाहर निकल आता है प्रकृति ने आवश्यकतानुसार सभी खाद्य पदार्थों में नमक का हिस्सा छोड़ रक्खा है एक लेखक का यह कहना है कि नमक खून को विषैला बना देता है। वह यह भी कहता है कि जो लोग बिल्कुल नमक नहीं खाते, उनका खून इतना स्वच्छ रहता है कि साँप के विष का भी प्रभाव उन पर कुछ नहीं पड़ता। हम नहीं कह सकते कि यह कहाँ तक सच है; लेकिन अपने निजी अनुभव से यह कह सकता हूँ कि दमा जैसे बहुत से रोग नमक छोड़ देने से शीघ्र आराम हो जाते हैं। दूसरी बात यह कि इसके छोड़ देने से किसी को कुछ हानि होते नहीं देखी गयी, बल्कि उन्हें कुछ लाभ ही होता है। मैंने स्वयं दो वर्ष से नमक छोड़ दिया है, और उसका परित्याग मुझे जरा भी नहीं अखरता; बल्कि कुछ अंश में मुझे लाभ ही हुआ है। अब मुझे पहले जैसा बार-बार पानी नहीं पीना पड़ता। मेरे नमक छोड़ने का कारण बड़ा ही अद्भुत है, अपनी स्त्री के रोग के कारण मुझे ऐसा करना पड़ा और वह इसके बाद अधिक बीमार न पड़ी; बल्कि उसी अवस्था में रही। यह मेरा विश्वास है कि यदि रोगी ने स्वयं इसे छोड़ दिया होता, तो उसे पूरा लाभ अवश्य होता। जो नमक छोड़ेंगे उन्हें दाल और

शाक भी छोड़ना पड़ेगा। यह एक बड़ा कठिन काम है। मुझे विश्वास है कि शाक और दाल नमक बिना हजम नहीं हो सकते इसका यह मतलब नहीं कि नमक पाचन-शक्ति को बढ़ाता है, उससे केवल ऐसा होते प्रतीत होता है और उसका परिणाम बुरा होता है। यदि कोई आदमी नमक छोड़ दे, तो कुछ दिन तक उसे कुछ अड़चन मालूम होगी। लेकिन यदि वह अपने धैर्य्य को कायम रखेगा, तो थोड़े ही दिनों में उसे बहुत लाभ हो सकता है।

मैं दूध को भी त्याज्य कहने का साहस करता हूँ। यह मैं अपने निजी अनुभव के आधार पर कहता हूँ जिसे यहाँ विस्तृत रूप से वर्णन करने की आवश्यकता नहीं समझता। दूध को सब लोग लाभकारी समझने के भ्रम में हैं। उनका विश्वास इतना अटल है कि उनके सामने इसे सर्वथा त्याज्य सिद्ध करना जरा कठिन है। जैसे कि मैं पहले कई बार कह चुका हूँ कि मेरे पाठक मेरी दलीलों को अक्षरश: मान लेंगे—ऐसा मेरा विश्वास नहीं है। मैं यह भी नहीं मानता कि यदि कोई तर्क द्वारा इसे मान भी ले, तो वह उसे कार्य्यरूप में परिणत करेगा। खैर! मुझे जो सत्य प्रतीत होता है उसे कह देना अपना कर्तव्य समझता हूँ; चाहे पाठक अपने ही सिद्धान्त को क्यों न मानें। डाक्टरों का मत है कि दूध में एक प्रकार की ज्वरोत्पादक शक्ति है। उन्होंने इसे सिद्ध भी किया है। बीमारी फैलाने वाले कीड़े जो हवा में रहते हैं शीघ्र ही दूध में प्रवेश कर जाते हैं और उसे विषैला बना देते हैं। अतः दूध को सर्वथा स्वच्छ रखना कठिन है। दक्षिण अफ्रीका में दूध के उबालने, उसे रखने, उसके बर्तनों को साफ करने के विषय में कुछ सरकारी कानून बनाये गये हैं जब इसके लिए इतनी सावधानी तथा परिश्रम की आवश्यकता है, तो हम कह सकते हैं कि यह वस्तु ग्रहण करने योग्य नहीं है।

इसके अतिरिक्त दूध का शुद्ध होना गाय के भोजन और उसके

स्वास्थ्य पर निर्भर है। डाक्टरों ने इसकी जाँच की है कि जो मनुष्य रोगी गाय का दूध पीता है उसे गाय के रोग की छूत लग जाती है, और फलतः वह भी रोग ग्रस्त हो जाता है। स्वस्थ गाय कठिनता से मिलती है, अतः शुद्ध दूध का भी मिलना कठिन है। सब लोग जानते हैं कि जो बच्चा रोगी माँ का दूध पीता है उसे भी माँ का रोग हो जाता है। साथ ही यदि बच्चा बीमार पड़ता है तो उसके रोग की औषधि उसकी माँ को इसलिए दी जाती है कि उसका दूध पीने से औषधि का प्रभाव बच्चे पर पड़ेगा। ठीक इसी तरह जैसा गाय का स्वास्थ्य होगा—उसका दूध पीने वाले का भी स्वास्थ्य वैसा ही होगा। अब सोचना चाहिए कि जब दूध को इतने हानि के साथ पिया जाता है तो क्या वह सर्वथा त्याज्य नहीं है? खासकर ऐसी अवस्था में जब कि हमें उससे भी अधिक पोषक पदार्थ सुलभ हैं। जैतून का तेल और मीठे बादाम में भी वही गुण हैं जो दूध में। बादाम को पहले पानी में उबाल लेना चाहिए। उसका छिलका छुड़ाकर तथा उसे खूब महीन पीस कर पानी में अच्छी तरह से मिला देना चाहिए। इस तरह यह एक अच्छी पेय तैयार हो जाती है, जिसमें दूध के सभी गुण मौजूद रहते हैं, और यह उन दोषों से रहित होता है।

अच्छा, अब इसके प्राकृतिक नियमों की ओर ध्यान दीजिये। बछड़ा तभी तक दूध पीता है जब तक कि उसके दाँत नहीं निकल आते। ज्योंही उसके दाँत निकल आते हैं त्योंही वह खाने लगता है। प्रकृति ने मनुष्य को भी ऐसा ही बनाया है। बाल्यकाल बीत जाने पर हम दूध पीते रहें ऐसा प्रकृति नहीं चाहती। हमें फल, बादाम, रोटी, सेव वगैरह पर ही अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए। जब दाँत निकल आवें तब दूध को छोड़ देने से, कितना धन और समय का बचाव होगा, इस पर विचार करने का समय नहीं है। सब लोग इसका विचार स्वयं कर सकते हैं। दूध की

बनी हुई चीजों की भी कोई आवश्यकता नहीं है। मट्ठे की जगह खट्टे निम्बू का रस और घी के जगह तेल का प्रयोग कर सकते हैं।

मनुष्य के शरीर की बनावट को ध्यानपूर्वक देखने से पता चलता है कि मांस मनुष्य का प्राकृतिक भोजन नहीं है। डा० हेग एवं किंग्सफोर्ड ने हम लोगों पर मांस का जो बुरा प्रभाव पड़ता है—उसे साफ साफ दिखला दिया है। वे इस बात को भली प्रकार समझा चुके हैं कि मांस भी दाल की तरह हानि पहुँचाने वाली वस्तु है। इससे दाँत असमय गिर जाते हैं और दमे की बीमारी हो जाती है। इससे मनुष्य का खून उत्तेजित होकर स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। हम पहले ही कह आये हैं कि यह भी एक प्रकार का रोग है। बड़े शर्म की बात है कि बहुत से विचार-शील और बुद्धिमान शाकाहारी मनुष्य इसके गुण अवगुणों को जानते हुये भी मांसाहारी बने हुये हैं। अन्त में हम इसी नतीजे पर आते हैं कि बहुत कम मनुष्य ऐसे हैं जो फलाहार पर जीवन बिताते हैं। फिर भी हम निःसंकोच कह सकते हैं कि गेहूँ और मीठा बादाम खा कर रहना बहुत आसान है।

सारांश यह कि फल पर जीवन व्यतीत करने वाले लोग बहुत कम हैं। फल, गेहूँ और जैतून के तेल पर रहना बहुत लाभप्रद है फलों में केले का स्थान सर्वप्रथम है। केला सन्तरा, खजूर, अंगूर और आलूचा भी अत्यन्त पुष्टिकर हैं, और रोटी के साथ खाये जा सकते हैं। जैतून के साथ रोटी स्वादहीन नहीं होती। ऐसे भोजन में अड़चन कम है, और पैसे भी कम खर्च होते हैं। इस भोजन में नमक, मिर्च, दूध और चीनी की आवश्यकता नहीं पड़ती। खाली चीनी खाना तो बहुत ही हानि-कारक है। अधिक मिठाई खाने से दाँत खराब होते हैं और स्वास्थ्य पर भी इसका पुरा प्रभाव पड़ता है। अच्छा खाद्य पदार्थ

गेहूँ, बादाम, मूँगफली और आरारोट से बनाया जा सकता है। इससे स्वास्थ्य भी सुधर सकता है।

दूसरा विचारणीय प्रश्न यह है कि हमें दिन भर में कितना और कितनी बार खाना चाहिए। इस महत्त्वपूर्ण विषय का उल्लेख हम आगे चलकर करेंगे।

६—भोजन की मर्यादा

भोजन के परिमाण विषय में डाक्टरों की राय में भिन्नता पाई जाती है। एक डाक्टर का कहना है कि अपनी इच्छानुसार खूब खाना चाहिए। इसने गुणों के अनुसार भोजन की मात्रा भी बना दी है। दूसरे को यह राय है कि मजदूर और दिमागी काम करने वालों के भोजन का औसत और गुण अलग अलग होना चाहिए। तीसरे डा० की राय है कि धनी और मजदूर दोनों को समान भोजन मिलना चाहिए। यह सभी स्वीकार करेंगे कि कमजोर मनुष्य बलवान की तरह नहीं खा सकता है। इसी तरह एक स्त्री एक पुरुष की अपेक्षा कम भोजन करती है और बच्चे तथा बूढ़े नौजवानों से कम खाते हैं। एक लेखक का यहाँ तक कहना है कि यदि हम लोग भोजन को इस तरह कुचलें कि वह अच्छी तरह लार में मिल जाय, तो हम ५ से १० तोले पर अपना गुजर कर सकते हैं। वह अपने अनुभवों के आधार पर यह कहता है, और उसकी इस विषय की पुस्तकों की हजारों प्रतियाँ बिक चुकी हैं। यह देखते हुए भोजन का वजन बताना उचित प्रतीत नहीं होता है।

अधिकांश डाक्टरों का कहना है कि ९९ प्रतिशत मनुष्य जरूरत से अधिक खाते हैं। यह प्रति दिन के अनुभव की बात है,

यह डा० के लिखे बिना भी जानी जा सकती है। कम भोजन करने से स्वास्थ्य के हानि की बिल्कुल सम्भावना नहीं। जहाँ तक हो सके भोजन की मात्रा कम ही करनी चाहिए।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है भोजन को खूब कुचलने की आवश्यकता है। ऐसा करने से हमें थोड़ी खूराक से भी सत्व मिल सकता है जो अत्यन्त ही लाभप्रद है। अनुभवी लोगों का कहना है कि जो आदमी पच जाने योग्य भोजन करता है, उसको अच्छी तरह चबाता है और आवश्यकता से अधिक नहीं खाता उसका पाखाना कड़ा, चिकना, थोड़ा काले रंग का और दुर्गन्ध रहित होता है। जिसकी टट्टी इस प्रकार खुलासा न हो तो उसे समझ लेना चाहिए कि वह अधिक भोजन करता है और उसे अच्छी तरह कुचल कर नहीं खाता है। इस तरह मनुष्य को अपनी टट्टी से अधिक और कम खाने की बात मालूम हो सकती है। स्वप्न देखना, नींद का आना और जबान पर मैल जमा रहना अधिक भोजन करने की पहचान है, और यदि रात में उसको बार बार पेशाब करना पड़े, तो उसे समझना चाहिये कि उसने अधिक रसदार चीजों को खा लिया है। ऐसा करने से प्रत्येक मनुष्य अपनी खूराक की उचित मात्रा पर पहुँच सकता है। बहुतों को खट्टी डकार आती है यह भोजन न पचने की पहचान है। अधिक खाने से बहुतों के पेट में वायु विकार पैदा हो जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि हम लोग अपने पेट को पाखाना बना लिए हैं, जिसे हर जगह लिए फिरते हैं। जब हम इन बातों पर विचार करते हैं तो अपने व्यक्तित्व पर हमें घृणा होती है। अगर हम लोग अधिक खाने के पाप से बचना चाहते हैं, तो हमें प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम किसी भी दावत में भाग न लें। हमारे यहाँ जब कोई मिहमान आ जाय तो उन्हें स्वास्थ्य के नियमों को ध्यान में रखते हुये खिलाना चाहिये। हम

लोग अपने मित्रों को केवल जल पीने के लिए या साथ में मिल-कर दाँत साफ करने के लिए तो कभी निमन्त्रित नहीं करते। क्या भोजन करने का नियम स्वास्थ्य के लिये आवश्यक नहीं है? हम लोग इतना पेटू हो गये हैं कि हमारी जिह्वा सदा स्वादिष्ट भोजन चाहती है, इसीलिए हम लोग अपने मिहमानों को स्वादिष्ट भोजन कराते हैं कि जब हम भी उनके यहाँ जायेंगे तो वे भी हमें वैसा ही भोजन करायेंगे। भोजन के एक घन्टे बाद यदि हम स्वच्छ शरीर वाले मित्र से अपने मुँह को सूँघने के लिए कहें और उसके वास्तविक विचार जानें, तो हमें अपना मुँह लज्जा से छिपाना पड़ेगा। लेकिन कुछ मनुष्य ऐसे निर्लज्ज होते हैं कि खाने के बाद शीघ्र ही कोई चूर्ण खा लेते हैं ताकि वे फिर खा सकें। कभी-कभी तो वे जो कुछ खाये रहते हैं उसको उल्टी भी कर देते हैं, और फिर भी भोजन के लिए बैठ जाते हैं।

चूँकि हम लोग अधिक भोजन करने के थोड़े-बहुत अपराधी हैं, इसलिए हमारे लिए धार्मिक दृष्टि से कभी-कभी व्रत रखने के नियम बनाये हैं। सचमुच स्वास्थ्य के विचार से एक पक्ष में एक दिन उपवास करना जरूरी है। बहुत से धार्मिक हिन्दू वर्षाकाल में एक ही वक्त खाते हैं। यह स्वास्थ्य के नियम का ही पालन है, क्योंकि जब वायु में अधिक भाप होता है और आसमान में बादल घिरे होते हैं तब हम लोगों की पाचन-शक्ति भी कुछ कम हो जाती है। अतः भोजन की मात्रा उन दिनों में कुछ कम करनी चाहिए।

अब हमें यह विचार करना है कि दिन में कितनी बार खाना चाहिए। हिन्दुस्तान के अधिकांश मनुष्य दो बार खाकर रहते हैं। जो कठिन परिश्रम करते हैं वे तीन बार खाते हैं, लेकिन अंग्रेजी औषधि द्वारा चार बार खाने का आविष्कार हुआ है। अब इंग्लैएड और अमेरिका में ऐसे समाज बने हैं जो केवल दो

बार खाने का प्रचार करते हैं। उनका कहना है कि हमें सुबह में जलपान नहीं करना चाहिए, क्योंकि हम लोगों की नींद ही इस कमी को पूरा कर देती है। सबेरे उठकर हमें काम में लग जाना चाहिए और तीन घंटे काम करने के बाद खाना चाहिए। जो इस नियम पर चलते हैं वे केवल दो बार भोजन करते हैं। डीवे नामक एक अनुभवी डाक्टर ने उपवास के लाभ पर एक अच्छी पुस्तक लिखी है, जिसमें सुबह का जलपान छोड़ देने के लाभ को अच्छी तरह समझाया है। मैं भी अपने अनुभव से वही कहता हूँ कि दो बार से अधिक खाने की आवश्यकता नहीं है।

७—व्यायाम

व्यायाम भी स्वास्थ्य के लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि हवा, पानी और भोजन। फुटबाल, हाकी तथा क्रिकेट या टहलने ही को केवल व्यायाम नहीं कहते, बल्कि तमाम शारीरिक तथा मानसिक कार्य व्यायाम ही में सम्मिलित हैं। भोजन की तरह, व्यायाम भी शरीर तथा मस्तिक के लिए आवश्यक है। इसके बिना दिमाग भी वैसे ही कमजोर पड़ जाता है जैसे कि शरीर। कमजोर दिमाग एक तरह का रोग है। एक पहलवान वास्तव में तब तक पहलवान नहीं कहा जा सकता है, जब तक कि उसका दिमाग भी उसके शरीर ही की तरह पुष्ट न हो। हम पहले ही कह चुके हैं कि पुष्ट दिमाग का पुष्ट शरीर में होना ही वास्तविक और सच्चा स्वास्थ्य है।

अब विचार करना है कि कौन से व्यायाम ऐसे हैं। जो शरीर और दिमाग दोनों के लिए पुष्टिकर हैं। वास्तव में प्रकृति ने हमें ऐसा बना रखा है कि हमारे शरीर और दिमाग दोनों को एक ही साथ काम में लाया जा सकता है। संसार में अधिकांश

मनुष्य कृषि पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। किसानों को अन्न-वस्त्र के लिये लगातार आठ-दस घन्टे काम करना पड़ता है और कभी-कभी तो इससे भी अधिक। जब तक दिमाग मजबूत न हो, लगातार कठिन परिश्रम असम्भव है। किसान प्राय कृषि सम्बन्धी सभी कामों को करता है इसके लिये उसे मिट्टी और ऋतु का ज्ञान होना आवश्यक है। यहाँ तक कि उसे सूर्य, चन्द्रमा और तारों की चाल की भी जानकारी चाहिये। योग्य से योग्य आदमी किसानों से इस सम्बन्ध में हार जाते हैं। वह अपने आवश्यक कार्यों के विषय में काफी ज्ञान रखता है। वह तारों को देखकर रात में दिशा का ज्ञान कर लेता है और चिड़िया तथा चौपायों के बारे में भी काफी अनुभव रखता है। जब एक खास किस्म की चिड़ियाँ एकत्रित होकर चह-कने लगती हैं तो वह समझ जाता है कि कब वर्षा होगी। यहाँ तक कि पृथ्वी और आकाश के विषय में भी वह ज्ञान रखता है। चूँकि उसे अपने बाल-बच्चों का पालन-पोषण करना पड़ता है, इस लिए वह धर्म सम्बन्धी बातों का भी ज्ञान रखता है। लम्बे-चौड़े आसमान के नीचे रहने के कारण वह ईश्वर के अस्तित्व को आसानी से समझ सकता है।

सभी लोग किसान नहीं हो सकते और न इस विषय में लिखने के लिए यहाँ काफी स्थान ही है। लेकिन चूँकि वे प्राकृ-तिक जीवन व्यतीत करते हैं, इसलिए उनके विषय में कुछ कहना आवश्यक प्रतीत हुआ। यदि हम प्राकृतिक नियमों को भंग करते हैं, तो अवश्य ही उसके कारण हमें स्वास्थ्य सम्बन्धी कुछ क्षति सहन करनी पड़ती है। किसान ही के जीवन से हमें यह शिक्षा मिलती है कि हमें दिन में कम से कम आठ घण्टा मानसिक और शारी-रिक परिश्रम करना चाहिये। व्यवसायी और अन्य लोगों को अवश्य कुछ काम करना पड़ता है, लेकिन उनका काम भी केवल

मानसिक होने के कारण व्यायाम नहीं कहा जा सकता है।

पाश्चात्य देशों में ऐसे लोगों के लिये क्रिकेट, फुटबाल या ऐसे ही छोटे छोटे खेलों का प्रबन्ध किया गया है। मानसिक व्यायाम के लिए किताब इत्यादि पढ़ने का प्रबन्ध किया गया है। ऐसे खेल शारीरिक व्यायाम के लिए कुछ अंश में उपयुक्त हो सकते हैं। लेकिन इनमें मानसिक व्यायाम नहीं होता। इन खिलाड़ियों में से कोई भी अपने मानसिक व्यायाम के लिए विख्यात नहीं हो सका है। कितने ही हिन्दुस्तानी राजकुमार अपने खेल की कला में विख्यात हो गये हैं। हम अपने अनुभव से कह सकते हैं कि ऐसे खिलाड़ियों में मानसिक ताकत नहीं होती। इङ्गलैण्ड के लोग ऐसे खेलों के बहुत प्रेमी होते हैं। लेकिन इन्हीं लोगों का किपलिंग नामक एक कवि उनके मस्तिष्क की शिकायत करता है।

हम हिन्दुस्तानियों का ढंग ही निराला है। हम में से बहुत कठिन मानसिक परिश्रम करते हैं परन्तु शारीरिक व्यायाम की ओर ध्यान ही नहीं देते उनका शरीर मानसिक परिश्रम के कारण कमजोर पड़ जाता है, और वे अनेक रोगों के शिकार बन जाते हैं। यहीं तक नहीं बल्कि जब संसार उनसे कुछ उपयोगी कामों की आशा करता है, तब वे असमय में ही इस संसार से उठ जाते हैं। हम लोगों के दोनों तरह के काम सीमा के अन्दर होना चाहिये। साथ ही ऐसा न होना चाहिए जिससे शारीरिक सुख की प्राप्ति हो। आदर्श व्यायाम वह है, जिससे शरीर एवं मस्तिष्क दोनों को लाभ पहुँचता हो। केवल ऐसा ही व्यायाम मनुष्य को स्वस्थ बना सकता है, और ऐसा ही मनुष्य सच्चा किसान हो सकता है।

लेकिन यह प्रश्न हो सकता है कि जो किसान नहीं हैं, वे क्या करें? क्रिकेट के खेल का व्यायाम उपयुक्त नहीं है। किसी दूसरे व्यायाम की व्यवस्था करनी चाहिए। साधारण आदमियों

के लिये सब से उत्तम व्यायाम यह हो सकता है कि वे अपने घर के निकट या पास के हाते में एक अच्छो सी फुलवाड़ी लगावें, और उसी में प्रतिदिन कुछ काम किया करें। कुछ लोगों का यह प्रश्न हो सकता है कि जिस घर में हम रहते हैं वह यदि अपना न हो तो क्या करें ? लेकिन यह एक मूर्खता का प्रश्न है क्योंकि चाहे जो कोई भी उस मकान का मालिक क्यों न हो उसे अपनी जमीन को इस प्रकार खोदकर बोने देने में कुछ भी आपत्ति न होगी। ऐसा करने से हमें भी प्रसन्नता होगी कि हमने किसी दूसरे की जमीन को खोद बो कर साफ किया। वे लोग जिन्हें एसा व्यायाम करने का समय नहीं मिलता, या जो इसे पसन्द नहीं करते—टहलने का अभ्यास कर सकते हैं, क्योंकि उसके बाद यह भी एक अच्छा व्यायाम है। साधु और फकीर लोग बहुत स्वस्थ हुआ करते हैं। इसका कारण यही है कि वे लोग देश भर में पैदल भ्रमण करते हैं। थोरो जो अमेरिका का एक प्रसिद्ध विद्वान् और लेखक है, इसकी प्रशंसा करते हुए इससे होने वाले अनेक लाभों को लिखता है। उसका कहना है कि ऐसे मनुष्य का लेख, जो सदा घर में रहता है और कभी बाहर टहलने नहीं जाता वैसे ही कमजोर होता है जैसा कि उसका शरीर। वह अपने को ही संकेत करके कहता है कि मेरे सभी लेख उन्हीं दिनों लिखे जा सके जब कि मैं टहलने का खूब अभ्यास रखता था। वह टहलने में इतना अभ्यस्त था कि दिन में चार-पाँच बार टहलना उसके लिए एक साधारण बात थी।

व्यायाम के लिए हम लोगों की इच्छा इतनी प्रबल होनी चाहिए कि किसी भी अवस्था में हतोत्साह न हों। हम लोग इस बात को नहीं समझ पाते कि शारीरिक व्यायाम के बिना हमारा मानसिक कार्य भी अधूरा और नीरस रह जाता है। चलने से शरीर के प्रायः सभी अवयव हिलते डोलते हैं, जिससे शरीर में

खून का दौरा ज्यादे हो जाता है। क्योंकि जब हम तेज चलते हैं तो ताजी हवा हमारे फेफड़ों में प्रवेश करती है, इसके अतिरिक्त हम प्राकृतिक दृश्य और उनकी सुन्दरता को देख कर प्रसन्न हो जाते हैं। सड़क और गन्दी गलियों में टहलना व्यर्थ है। हमें मैदान या जंगल झाड़ियों में टहलना चाहिए, जहाँ कि हमें प्राकृतिक दृश्य देखने को मिल सकें। एक या दो मील टहलना नहीं टहलने के बराबर है। कम-से-कम दस या बारह मील टहलना आवश्यक है। जिसको टहलने के लिए इतना अवकाश नहीं मिलता, वे रविवार को ऐसा कर सकते हैं।

एक बार एक आदमी जिसको अजीर्ण का रोग हो गया था एक डाक्टर के पास गया। डाक्टर ने उसे प्रतिदिन थोड़ा टहलने की सलाह दी। लेकिन वह ऐसा करने में अपने को सर्वथा असमर्थ बतलाता था। तब डाक्टर उसे अपनी गाड़ी में बैठा कर टहलने के लिए ले गया। डाक्टर ने रास्ते में जान बूझ कर अपना कोड़ा जमीन पर गिरा दिया। यह देखकर रोगी कोड़ा लाने के लिए नीचे उतरा। डाक्टर ने रोगी के लिए उपयुक्त मौका देखकर गाड़ी आगे बढ़ा दी। लाचार होकर रोगी को गाड़ी के पीछे-पीछे पैदल दौड़ना पड़ा। जब डाक्टर ने देखा कि रोगी काफी थक चुका है तो गाड़ी रोक दी और उसे गाड़ी में बैठा लिया। डाक्टर ने रोगी को समझाया कि पैदल चलवाने के लिए ही उसने ऐसा किया था।

अब पैदल चलने से उस आदमी को भूख लग गई इसलिए वह डाक्टर के आदेश के महत्त्व को समझ गया और उसे कोड़ा लाने में जो तकलीफ हुई थी उसे भूल गया। घर जाकर अच्छी तरह भोजन किया। जिन्हें अपच या और कोई ऐसी ही बीमारी हो तो वे नियमपूर्वक टहलने का अभ्यास करें शीघ्र ही टहलने के लाभ समझ में आ जायँगे।

८—पोशाक

पोशाक भी स्वास्थ्य के लिए किसी हद तक आवश्यक है। यूरोपीय महिलायें अपनी शोभा बढ़ाने के लिए ऐसी पोशाक पहनती हैं जिससे पैर छोटा और कमर पतली रहे। इसके कारण उन्हें अनेक बीमारियाँ हुआ करती हैं। चीन में स्त्रियों के पैर जान-बूझकर हमारे यहाँ के बच्चों के पैर से भी छोटे कर दिये जाते हैं, जिसके फलस्वरूप उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। उपरोक्त बातों से अब पाठक समझ गये होंगे कि स्वास्थ्य का सम्बन्ध कुछ अंश में पहिनावे से भी अवश्य है। पोशाक के विषय में हमें अपने बड़े-बूढ़ों का अनुकरण करना पड़ता है। पोशाक के मुख्य उद्देश्य को हम लोग भूल गये हैं और उसे अपने देश, धर्म और जाति का सूचक मानने लगे हैं ऐसी हालत में खासकर स्वास्थ्य के लिहाज से पोशाक के विषय में विचार करना कठिन प्रतीत होता है। लेकिन इस तरह के वाद-विवाद से हमें अधिकांश लाभ ही होता है। कपड़े, जूते और गहने की भी गणना पोशाक में की जाती है।

पोशाक का मुख्य उद्देश्य क्या है? इसे कम लोग जानते हैं, आदिकाल में मनुष्य कपड़ा नहीं पहनते थे। चारों तरफ नंगा फिरा करते थे। वे अपने गुप्त भाग को ढक लेते थे, शेष सारे शरीर को खुला रखते थे जिससे उनकी त्वचा कठिन और बलिष्ठ हो जाती थी तथा वे हवा और पानी को अच्छी तरह सहन कर लेते थे, उन्हें कभी ठण्डक नहीं लगती थी। जैसा कि हवा के प्रकरण में वर्णन किया गया है कि हम केवल नाक से ही हवा नहीं लेते बल्कि शरीर के रोम-छिद्रों द्वारा भी अपने अन्दर हवा लेते हैं। अतः जब हम कपड़ा पहन लेते हैं तो शरीर के चमड़े की एक बहुत बड़ी क्रिया को रोक देते हैं। ठन्डे देश के लोग ज्यों-ज्यों

आलसी एवं सुस्त होते गये उन्हें कपड़े की आवश्यकता प्रतीत होती गई। जब वे ठण्ड बरदाश्त नहीं कर सके तब पोशाक की प्रथा चल पड़ी। अन्त में लोगों ने पोशाक को आभूषण का स्थान दे दिया। अब तो पोशाक जाति, देश भेद बताने के लिए आव-श्यक हो गयी है।

सचमुच प्रकृति की तरफ से मनुष्य को चमड़े की एक अच्छी पोशाक मिली है। यह केवल हम लोगों का भ्रम है कि शरीर नङ्गा रहने से बुरा मालूम होता है क्योंकि अच्छा-से-अच्छा चित्र तो नंगी दशा में ही दिखलाया जाता है। पोशाक से हम अपने अंगों को ढक कर उनका दोष छिपाते हैं और इस तरह प्रकृति के कामों में बाधा पहुँचाते हैं। भेष बनाने में भी हम पैसों को बरबाद करते हैं। सब प्रकार से मनुष्य अपना सौन्दर्य बढ़ाना चाहता है। शीशे में मुँह देखकर अपनी सुन्दरता पर इतराता है। अगर ऐसे स्वभाव से हम लोगों की नजरों में कुछ अन्तर न पड़े तो हम सोच सकते हैं कि मनुष्य का सब से सुन्दर रूप नग्न अवस्था ही में दिखलाई देता है और उसी से वह स्वस्थ भी रह सकता है शायद कपड़ों से सन्तुष्ट न होकर हम लोग गहना पहनना कर्त्तव्य समझने लगे हैं।

अधिकांश मनुष्य पैरों में कड़ा, कानों में बाली और हाथ में अंगूठी पहनते हैं। इनसे बीमारियाँ उत्पन्न होती है। यह जानना मुश्किल है कि इनके पहनने से कौनसी शोभा बढ़ती है। इस विषय में स्त्रियों ने तो और भी कमाल कर डाली है। वे पैरों में वजनी कड़े और पायजेब पहनतीं, जिससे पैर उठना भी कठिन हो जाता है। नाक में वजनी नथ लटकी रहती है और कानों में बालियाँ गुथी रहती हैं। हाथों के गहने का तो कुछ पूछना ही नहीं है। इस पहिरावे से उनके शरीर पर मैल जमी रहती है। कान और नाक में तो खूब ही मैल जम जाता है वे

इस तरह के अपने गन्दे बनाव को शृङ्गार समझती हैं और पैसा पानी की तरह बहाती हैं। ऐसा करके अपनी जान को खतरे में डालते वे कुछ भयभीत नहीं होतीं, हम लोग अभिमान के कारण मूर्ख बन बैठे हैं, ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं कि कितना ही स्त्रियाँ कानों में फोड़ा हो जाने पर भी अपनी बालियाँ नहीं उतारतीं। फोड़ों से हाथ पक जाने पर भी जेवर नहीं उतारतीं यद्यपि उनकी अंगुलियाँ सूज जातीं हैं फिर भी वे अंगूठियों को इस ख्याल से नहीं उतारतीं कि उनकी सुन्दरता में कुछ कमी आ जावेगी।

पहिनाव में पूर्ण सुधार करना साधारण बात नहीं लेकिन कम-से-कम हम सभी के लिए यह मुमकिन है कि अपने सब गहने और अनावश्यक पहनावे को छुड़ दें रीति-रिवाज के लिये उनमें से कुछ का प्रयोग कर सकते हैं और शेष को अलग कर सकते हैं जिनकी यह धारणा है कि ये सब पहिनावे केवल दिखावा-मात्र हैं वे अपने पहिनावे में बहुत कुछ परिवर्तन कर सकते हैं और ऐसा कर अपने को स्वस्थ रख सकते हैं

आजकल अधिकतर लोगों का यह ख्याल हो गया है कि अपनी प्रतिष्ठा और सुन्दरता के लिए अंग्रेजी ढंग की पोशाक आवश्यक है। इस विषय पर यहाँ तर्क करने का स्थान नहीं है। यहाँ पर इतना ही कह देना काफी है कि अंग्रेज लोगों की पोशाक उनके ठण्डे मुल्क के लिए भले ही उपयुक्त हो, लेकिन वह हिन्दुस्तान के लिए बेकार है। चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, उनके लिए हिन्दुस्तानी पोशाक ही स्वास्थ्यकर होती है। हम लोगों का वस्त्र ढीला और खुला होता है अतः हमारे शरीर में हवा के प्रवेश करने में कोई अड़चन नहीं होती। काले कपड़ों में सूर्य की गर्मी रुक जाने से वह गर्म रहता है और शरीर को भी गर्म रखता है। सिर को पगड़ी से ढके रहना हमारे लिए एक साधारण बात हो गई है। जहाँ तक सम्भव हो सिर को खुला

रखना चाहिए। बाल को बढ़ाना, कंघो करना और बीच से माँग निकालना जंगलीपने की निशानी है। बढ़े हुए बालों में मैल और जूँ पड़ जाते हैं। अगर बालों के अन्दर फोड़ा निकल आवे तो उचित औषधि करना भी कठिन हो जाता है। खास कर उन लोगों के लिए जो पगड़ी का प्रयोग करते हैं, बाल बढ़ाना मूर्खता है।

पैरों के द्वारा भी हम बहुत से रोगों के शिकार हो जाते हैं। बूट और जूते पहनने वालो के पैर गन्दे हो जाते हैं और पसीना देने लगते हैं। जूता और मोजा उतारते समय–जिसे बदबू की पहचान होगी, उसका वहाँ खड़ा रहना मुश्किल हो जाता है। जूते का दूसरा नाम कंटकारी है। इससे यह साबित होता है कि जब हमें काँटों में ठंडक में अथवा धूप में चलना पड़े तभी जूतों को पहनना चाहिए और वह भी इस तरह के जिनसे केवल तलवे ढक सकें और सारा पैर खुला रहे। खड़ाऊँ से यह आवश्यकता पूरी हो सकती है। जिनके सिर में दर्द रहता हो, शरीर निर्बल हो, पैरों में दर्द होता हो उनके लिए तो हमारी यह राय है कि वे नंगे पाँव चलने का अभ्यास करें। ऐसा करने से वे शीघ्र लाभ का अनुभव करेंगे।

६—पुरुष-स्त्री का संयोग

पिछले प्रकरणों के पढ़ने वालों से मेरी प्रार्थना है कि वे इस प्रकरण को और भी ध्यान से पढ़ें और इस पर विचार करें। क्योंकि यह विषय बहुत गम्भीर और महत्त्वपूर्ण है। अन्य प्रकरण भी उपयोगी हैं और वे अपना अलग-अलग महत्व रखते हैं; लेकिन जीवन के लिए इससे उपयोगी और महत्वपूर्ण दूसरा प्रकरण नहीं है। मैं पहले कह चुका हूँ कि इस पुस्तक में कोई

ऐसी बात नहीं लिखी गई है जिसका मैंने स्वयं अनुभव न किया हो अथवा जिस पर मेरा विश्वास न हो।

स्वास्थ्य के बहुत से नियम हैं जिनकी आवश्यकता भी है। इनमें ब्रह्मचर्य्य का सबसे ऊँचा स्थान है। इसमें कोई शक नहीं कि स्वास्थ्य के लिए स्वच्छ फल, स्वच्छ वायु तथा पौष्टिक भोजन आवश्यक हैं, लेकिन अगर हम अपने सब संचित बल का नाश कर दें तो हम कैसे स्वच्छ रह सकते हैं। यदि हम अपना उपार्जन किया हुआ सब धन व्यय कर दें तो किस तरह धन संचय कर सकते हैं? इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब तक स्त्री और पुरुष ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण नहीं करेंगे कदापि स्वस्थ नहीं रह सकेंगे।

ब्रह्मचर्य्य का क्या अर्थ है? इसका यही अर्थ है कि पुरुष स्त्री का और स्त्री पुरुष का भोग न करें। वे एक दूसरे को इस अभिप्राय से स्पर्श न करें, जिससे मन में विकार उत्पन्न हो। इन्हें इन्द्रियों को दमन करके उस शक्ति की रक्षा करनी चाहिये जिसे ईश्वर ने हमें प्रदान किया है। हमें ऐसा करके अपनी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करना चाहिये।

लेकिन प्रति दिन हम क्या दृश्य देखते हैं? हम यही देखते हैं कि स्त्री, पुरुष, वृद्ध और युवा सभी कामान्ध हो रहे हैं जिसके कारण वे उचित अनुचित का विचार खो बैठे हैं। हमें यहाँ तक देखने में आता है कि छोटे छोटे बालक और बालिकायें भी इस कुटेव में पड़ कर पागल हो रही हैं। मैं स्वयं इसके फेर में पड़ चुका हूँ। एक क्षण की तृप्ति के लिए हम अपने पूर्वसंचित बल को खो देते हैं और ज्यों ही इस भूल की छूत दूर हो जाती है, हम अपने का बुरी दशा में पाते हैं। दूसरे दिन सुबह हमें कमजोरी और सुस्ती मालूम होने लगती है और किसी काम के करने को जी नहीं चाहता। तब हम अपनी कमजोरी को दूर करने के लिए औषधियों का आश्रय लेते हैं। इसी तरह हमारे दिन व्यतीत

होने लगते हैं और असमय में ही बुढ़ापा आ घेरता है फलतः हम निकम्मे और भारस्वरूप हो जाते हैं।

लेकिन प्रकृति यह नहीं चाहती। उसका नियम ठीक इसके प्रतिकूल है। ज्यों-ज्यों हम बुड्ढे होते जायँ, हमारी बुद्धि भी बढ़नी चाहिए और जितना ही हम अधिक दिन जीवित रहें हमें अपने अनुभव से दूसरों को लाभ पहुँचाना चाहिए। जो सच्चे ब्रह्मचारी हैं वे ऐसा ही करते हैं। वे मृत्यु से भी नहीं डरते और न उनकी शिकायत ही करते हैं वे प्रसन्नता पूर्वक मृत्यु की गोद में बैठते हैं और धीरता-पूवक परमात्मा के सन्मुख न्याय के लिये उपस्थित होते हैं ऐसे ही स्त्री-पुरुषों का जीवन सार्थक कहा जा सकता है।

हम प्रायः इस पर विचार नहीं करते कि ब्रह्मचर्य का नाश ही प्रमाद, मत्सर्य, अभिमान, क्रोध, आधीनता, आडम्बर आदि का प्रधान कारण है। यदि हमारा मन हमारे वश में नहीं है और प्रतिदिन बच्चों की तरह नादानी करता है तो हमें कोई भी पाप करने में हिचकिचाहट नहीं होती, और हम अपने किये हुए कार्यों का दुष्परिणाम भी नहीं सोच सकते।

सवाल हो सकता है कि सच्चे ब्रह्मचारी को किसने देखा है। अगर सभी ब्रह्मचारी ही बन जायँ तो सृष्टि का ही लोप हो जाय। यह प्रश्न विचारणीय है किन्तु इसमें कुछ अंश तक धार्मिकता आ जाती है, अतः इस विषय को यहीं छोड़ कर हम केवल सांसारिक दृष्टि से ही विचार करेंगे। हमारी समझ में ये दोनों ही प्रश्न हमारे मिथ्याभय और कमजोरी के सूचक हैं। हम ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करना चाहते इसलिए ऐसे प्रश्नों को उठा कर मुख्य विषय को हटा देना चाहते हैं। दुनियाँ में ब्रह्मचर्य के पालन करने वाले बहुत हैं, परन्तु यदि वे हमें यों ही मिल जायँ

तो फिर उनका महत्व की क्या रहे। हीरे की खोज में हजारों मनुष्य कठिन परिश्रम से जमीन को खोदकर खान में पहुँचते हैं तब कहीं उन्हें पर्वताकार कंकड़ों में इने गिने हीरे मिलते हैं। अब सोचना चाहिए कि ब्रह्मचारी रूपी हीरों की खोज में हमें कितना प्रयत्न करने की आवश्यकता है। अगर ब्रह्मचर्य पालन करने से दुनिया का नाश होता है तो उसकी चिन्ता हमें क्यों है? इस छोटी बात के लिए हम ब्रह्मचर्य के पीछे क्यों पड़ते हैं सृष्टि का प्रबन्धकर्ता ईश्वर है और उसका भार उसके ऊपर है उसने उसे बनाया है और वही उसकी रक्षा करेगा। यह सवाल उठाना कि, दूसरे ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं या नहीं, हमारा काम नहीं है। जब हम व्यवसाई, वकील या डाक्टर बनते हैं तो कभी यह ख्याल नहीं करते कि अगर दुनिया के सब लोग इसी पेशें में हो जायँ तो हमारी क्या हालत होगी। ब्रह्मचारी को इसका उचित उत्तर अन्त में स्वयं मिल जायगा।

सांसारिक मनुष्य इन विचारों को कार्य रूप में कैसे ला सकते हैं? विवाहित मनुष्य क्या करें? बाल बच्चेवालों को क्या करना चाहिए? और जो अपने मन को वश में नहीं कर सकते, उन्हें क्या करना चाहिए? इन सबका उचित उत्तर पहिले ही दिया जा चुका है। उस आदर्श को सामने रखते हुए हमें ठीक वैसा ही करना चाहिये। जब छोटे-छोटे बच्चों को अक्षरों का ज्ञान कराया जाता है तो अक्षरों की सूरत उनके सामने रखी जाती है और वे ठीक वैसा ही शक्ल बनाने की कोशिश करते हैं। यदि हम लोग ठीक ऐसे नियमानुसार ब्रह्मचर्य्य का पालन करते जायँ, तो हमें अवश्य लाभ होगा। यदि हम विवाहित हैं तो हमें अपने ब्रह्मचर्य्य का तभी नाश करना चाहिये जब संतानोत्पत्ति करना हो। यही प्रकृति का नियम है। जो इसके अनसार चौथे पाँचवें वर्ष ब्रह्म-

चर्य्य तोड़ते हैं वे कामी नहीं कहलाते और न उनका स्वास्थ्य ही बिगड़ सकता है। लेकिन अफ़सोस है कि हम लोगों में से बहुत कम सन्तानोत्पत्ति के लिए ऐसा करते हैं। हज़ारों विषय-वासना की तृप्ति के लिए ही ऐसा करते हैं। फल यह होता है कि उनकी सन्तान उनकी इच्छा के विरुद्ध होती है। काम के वेग में हम लोग प्रायः उसके फल को नहीं सोचते। इस विषय में स्त्री की अपेक्षा पुरुष ही अधिक दोषी होते हैं। वे इतना कामान्ध हो जाते हैं कि वे इतना भी नहीं सोच सकते कि स्त्री सन्तान देने योग्य है या नहीं। पाश्चात्य देशवालों ने तो इसकी हद ही कर दी है। वे भोग-विलास करते हैं। और सन्तान की उत्पत्ति से बचने के लिए अनेक उपचार करते हैं। हजारों पुस्तकें इस विषय पर लिखी गई हैं। हजारों इसका व्यवसाय करते हैं और घोषणा करते हैं कि अमुक काम करने से भोग विलास करने पर भी सन्तान उत्पत्ति का भय नहीं। हम लोग अभी इस पाप से बचे हैं लेकिन स्त्री को सन्तान के बोझ से बोझित करते हम जरा भी नहीं हिचकते। हम लोग यह नहीं सोचते कि हमारी सन्तान कमजोर, वीर्यहीन, पागल और निर्बुद्धि होगी बल्कि ऐसी सन्तानों के लिये हम ईश्वर को धन्यवाद देते हैं और खुशी मनाते हैं। क्या इससे भी भयावह वस्तु हो सकती है? इस विषय में हम लोग जानवरों से भी गये बीते हैं। क्योंकि जानवर तो बच्चा पैदा करने के समय ही सम्भोग करते हैं। जब तक बच्चा दूध पीता रहे माँ-बाप को इस हरकत से बचना चाहिए। लेकिन हम लोग इसके ऊपर ध्यान नहीं देते। यह रोग हम में बढ़ता ही जा रहा है यदि हमारी यह हालत रही तो यह शीघ्र ही हमें कब्र के नजदीक पहुँचा देगा। विवाहित मनुष्य को विवाह का महत्व समझना चाहिए और सन्तान उत्पत्ति के लिये ही सम्भोग करना चाहिए। क्षणिक आनन्द के लिये कभी भी सम्भोग नहीं करना चाहिये।

किन्तु वर्त्तमान अवस्था में ऐसा करना कठिन है; क्योंकि हमारा भोजन, रहन-सहन, बातचीत और आस-पास के दृश्य ऐसे हो गये हैं जो सदैव हमारी कामवासना को उत्तेजित करते रहते हैं और आखिर में हमारे लिए विष का काम करते हैं। बहुतों को इसमें सन्देह होता है कि जब हमारी यह हालत है तब हम इससे कैसे छुटकारा पा सकते हैं। यह पुस्तक उन लोगों के लिए नहीं है जिनके मन में इस प्रकार के सन्देह रहते हों; बल्कि उनके लिए है जो सच्चे हृदय से इसका अभ्यास करने लग जायँ। जो लोग अपनी वर्त्तमान अवस्था में ही सन्तुष्ट हैं वे तो इसे पढ़कर झुँझला उठेंगे। लेकिन मेरा विश्वास है कि जो लोग अपनी वर्त्तमान परिस्थिति से घबड़ा गये हैं उनके लिए यह लाभदायक सिद्ध होगी।

इन बातों से हम समझ सकते हैं कि जो अविवाहित हैं उन्हें अभी विवाह नहीं करना चाहिए और यदि किये बिना काम न चले तो जहाँ तक सम्भव हो देर से विवाह करें। युवकों को तो प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए कि पच्चीस-तीस वर्ष तक ब्याह नहीं करेंगे। ऐसा करने से जो शारीरिक लाभ उन्हें होगा उसे बतलाने की आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकरण के पढ़ने वाले माता-पिता से मेरी प्रार्थना है कि वे अपनी सन्तान की शादी बचपन में न करें। उन्हें उनके भविष्य का भी ख्याल रखना चाहिए। उन्हें समाज एवं प्रतिष्ठा के लिए ब्याह करने की इच्छा छोड़ देनी चाहिए यदि वे उनके सच्चे हितैषी हैं तो उन्हें उनके शारीरिक तथा मानसिक बल को बढ़ाने की ओर ध्यान देना चाहिए। इससे बढ़कर और बुरी बात क्या हो सकती है कि बचपन में ही उनका हम ब्याह कर उनके ऊपर एक बोझ लाद देते हैं और उनका स्वास्थ्य खराब कर उनका भविष्य बिगाड़ देते हैं।

स्वास्थ्य का नियम बतलाता है कि जिस स्त्री का पुरुष मर गया हो या जिस पुरुष की स्त्री मर गई हो वह दोबारा व्याह न करे। कुछ डाक्टरों की राय है युवा स्त्री-पुरुष को वीर्य-पात का अवसर मिलना चाहिए और कितने ही इसके विपरीत राय देते हैं; अब अगर हम यह सोचकर कि एक पक्ष हमारा समर्थन करता है—अपने वीर्य का नाश करें, यह अनुचित है। मैं अपने निजी अनुभव के आधार पर निःसंकोच कहूँगा कि वीर्य-पात स्वास्थ्य के लिए बड़ा ही हानिकारक है और ऐसा करना निरी मूर्खता है। बहुत दिनों का संचित किया हुआ वीर्य यदि एक बार भी नष्ट हो जाता है तो उसकी पूर्ति करते कुछ दिन लग जाते हैं और फिर भी पूरा नहीं हो पाता। टूटा हुआ शीशा जोड़ा जा सकता है और उससे काम भी लिया जा सकता है लेकिन फिर भी वह टूटा हुआ ही कहा जायगा।

पहिले बतलाया जा चुका है कि वीर्य-रक्षा के लिए साफ हवा, साफ पानी, पुष्टिकर भोजन, साधारण रहन-सहन और स्वच्छ विचारों की अति आवश्यकता है, आचरण और आरोग्यता में इतनी घनिष्टता है कि एक सदाचारी मनुष्य ही नीरोग हो सकता है। वह मनुष्य जो अपने किये हुए दुष्कर्मों को भूल कर सदाचारी बनने की कोशिश करता है, वह अपने प्रयास में शीघ्र ही सफलीभूत होता है। जिन्होंने थोड़े दिनों के लिये भी ब्रह्मचर्य धारण किया है उन्हें अनुभव हुआ है कि थोड़े समय में ही उनके शारीरिक एवं मानसिक बल का कितना विकास हुआ है। जिन्हें इस प्रकार के अनुभव हो गये हैं वे किसी भी हालत में अपने संचित वीर्य-कोष को घटाना नहीं चाहेंगे। मैं ब्रह्मचर्य के महत्व को जानते हुए भी स्वयं उसके नियमों का उलंघन करके उसके दुष्परिणाम को भी भोग चुका हूँ। जब मैं अपनी उस अवस्था को याद करता हूँ। तो लज्जा से मेरा सिर झुक जाता है। लेकिनी

अपने पिछले कुकर्मों के फल से मुझे अच्छी शिक्षा मिली है और अब वर्त्तमान एवं भविष्य में अपने खजाने को संचित करने का बराबर प्रयत्न कर रहा हूँ और उससे बहुत लाभ उठा रहा हूँ। मेरा भी व्याह बचपन ही में हो गया था और कम उम्र में ही मैं कुछ बच्चों का पिता बन बैठा था, लेकिन जब मैंने अपनी परिस्थिति पर विचार किया तो अपने को बहुत ही भीषण एवं पतित अवस्था में पाया। यदि पाठकों में से एक ने भी इस पुस्तक से लाभ उठाया तो मैं समझूंगा कि इस पुस्तक के लिखने का मुझे उचित पुरस्कार मिल गया है। बहुत से लोगों का यह कहना है और मेरा भी विश्वास है कि मेरा मस्तिष्क कमजोर नहीं है और मेरे अन्दर पूरा उत्साह है कुछ लोग तो मुझे हठी तक कहने में संकोच नहीं करते। मेरा मस्तिष्क और शरीर दोनों नीरोग हैं; लेकिन जब मैं अपने मित्रों के साथ अपनी तुलना करता हूँ तो अपने को पूर्ण स्वस्थ कह सकता हूँ। अब बीस वर्ष तक विषय भोग के पश्चात् मैं अभी इतना स्वस्थ हूँ, यदि उन बीस वर्षों में भी मैं विषय-वासना से वंचित रहता तो आज कितना स्वस्थ होता। यह मेरा पूर्ण विश्वास है कि यदि उन दिनों मैंने पवित्र-जीवन व्यतीत किया होता तो इस समय से हजार गुना अधिक स्वस्थ और उत्साही होता और इस तरह अपने भाइयों को, अपने को और देश को कुछ अधिक लाभ पहुँचा सकता। जब मुझ जैसे साधारण व्यक्ति की यह हालत है तो जो मनुष्य अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करेगा उसका मस्तिष्क, शरीर और उसके अवयवों का कितना विकास होगा।

जब ब्रह्मचर्य्य के नियम इतने कठिन हैं तो उन लोगों के विषय में क्या कहा जा सकता है जो सदैव स्त्री-संभोग करने के अपराधी हैं। वेश्या तथा पराई स्त्री पर कलुषित विचार रखने से बहुत बुरा परिणाम होता है। इसका विचार आरोग्य सम्बन्धी

ातों के साथ नहीं किया जा सकता। यह तो धर्म और नीति का विषय है। यहाँ इतना ही कहना उचित होगा कि वेश्या-गमन एवं पर स्त्री सम्भोग के कारण हजारों मनुष्य गर्मी, सुजाक तथा ऐसे ही अन्य रोगों के शिकार होते देखे जाते हैं। प्रकृति ऐसे स्त्री-पुरुषों को शीघ्र दण्ड देती है। उनके पाप फूट निकलते हैं और उन्हें डाक्टर का दरवाजा खटखटाना पड़ता है। जिस स्थान पर यह बातें नहीं होतीं वहाँ ५० प्रतिशत वैद्य और डाक्टर बेकार हो जाते हैं। मनुष्य जाति को इन बीमारियों में फंसा देख डाक्टर लोग यह कहने को बाध्य होते हैं कि यदि पर-स्त्री-गमन का यही सिलसिला जारी रहा तो औषधियों के सेवन करने पर संतान-नाश की सम्भावना बनी रहेगी। इन रोगों की दवा बहुत विषैली होती है। अतः रोग दूर हो जाने पर भी उसका प्रभाव बहुत बुरा पड़ता है। ये रोग पीढ़ी-दर-पीढ़ी होते चले जाते हैं।

इस विषय को समाप्त करते हुए मैं विवाहित स्त्री-पुरुषों को संक्षेप में ब्रह्मचर्य्य पालन करने के नियमों को बतला देना चाहता हूँ। भोजन, हवा और पानी के नियमों का पालन करने ही से ब्रह्मचर्य्य की रक्षा नहीं हो सकती। पुरुष को स्त्री के साथ एकान्त में नहीं सोना चाहिए। स्त्री-पुरुष को विषय-भोग ही के लिए एकान्त-वास की आवश्यकता होती है। उन्हें रात में अलग-अलग सोना चाहिये। दिन में अच्छे विचारों और कामों में लगे रहना चाहिये उन्हें ऐसी किताबें पढ़नी चाहिएँ जो उनके अन्दर अच्छे विचार उत्पन्न करें, उन्हें महान पुरुषों का जीवन चरित्र पढ़कर शिक्षा लेनी चाहिये। उन्हें सदा स्मरण रखना चाहिए कि स्त्री-सम्भोग ही सब रोगों की जड़ है। जब विषय-इच्छा उत्पन्न हो तब ठंडे पानी से स्नान कर लेना चाहिये इससे शरीर के अंदर की महाग्नि शान्त पड़ जायगी और इसका परिणाम स्त्री-पुरुषों के लिए उपकारी होगा। यह काम कठिन है परन्तु कठिनाइयों

पर विजय पाने के लिए ही तो हम पैदा हुए हैं। जो लोग इस कठिनाइयों का सामना करने से पीछे हटेंगे वे कभी निरोग नहीं रह सकते।

१०—साधारण उपचार

वायु-चिकित्सा

अब तक हमलोग स्वास्थ्य प्राप्ति और उसकी रक्षा के विषय में विचार किए हैं। यदि सब स्त्री-पुरुष स्वास्थ्य के नियमों का पालन करें और स्वस्थ रहने के लिए ब्रह्मचर्य्य का पालन करें, तो आगे लिखे जानेवाले प्रकरणों की आवश्यकता ही न हो। क्योंकि ऐसे व्यक्तियों को शारीरिक या मानसिक व्याधियाँ सता ही नहीं सकतीं। किन्तु ऐसे स्त्री-पुरुष बहुत कम मिलते हैं। आजकल ऐसा कौन है जिसको किसी प्रकार का रोग न हो। स्वास्थ्य सम्बन्धी जितने नियम बतलाये जा चुके हैं उनका जितना ही हम पालन करेंगे उतना ही नीरोग रहेंगे। लेकिन जब हम रोग ग्रसित हो जायँ तो उसका उचित उपचार करना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है। आगे के प्रकरणों में यही बतलाया जायगा कि डाक्टरों की सहायता बिना उन रोगों का उपचार कैसे किया जा सकता है।

स्वास्थ्य के लए स्वच्छ वायु जितनी आवश्यक है, रोगों के उपचार के लिए भी उसकी वैसा ही जरूरत है। उदाहरण के लिये उस मनुष्य को लीजिये जिसे गठिया का रोग हो। यदि उसे गर्म हवा की भाप दी जाय तो उसको पसीना आ जायगा और उसके जोड़ खुल जायेंगे। इस किस्म की वायु चिकित्सा को

"टाकेश बाथ" कहते हैं। यदि किसी मनुष्य को अधिक ज्वर हो गया हो और बुखार की गर्मी से उसका शरीर जल रहा हो तब यदि उसके सभी कपड़े उतार कर उसे खुली हवा में सुला दिया जाय तो उसके बुखार में शीघ्र कमी हो जाती है और उसे कुछ आराम मिलता है। यदि उसे ठण्ड मालूम हो और एक कम्बल ओढ़ा दें तो उसके बदन से पसीना निकलने लगता है और बुखार कम हो जाता है लेकिन हमलोग साधारणतः ऐसी दशा में इसके प्रतिकूल काम करते हैं। रोगी यदि खुली हवा में रहना चाहता है तो भी हम उसके कमरे के तमाम दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द कर देते है और उसका सारा शरीर यहाँ तक कि सिर और कान भी ढक देते हैं। फल यह होता है कि रोगी घबड़ाने लगता है और कमजोर पड़ जाता है। यदि गर्मी के कारण बुखार आया हो तो उपरोक्त वायु का उपचार बहुत ही लाभदायक होता है। इसमें डरने की कोई जरूरत नहीं। हाँ, इसका ख्याल रखना चाहिए कि रोगी को अधिक ठंड न लगने पावे यदि वह बिल्कुल नंगा न रह सके तो उसे कपड़े से ढककर बाहर खुली हवा में रखना चाहिए।

जीर्ण ज्वर और ऐसी ही अन्य बीमारियों के लिए आब-हवा बदलना एक अक्सीर दवा हैं। साधारणतः जो लोग आब-हवा बदलते हैं, वे एक प्रकार का वायु-उपचार ही करते हैँ। हम लोग बहुधा अपने घर को इस भाव से भी बदलते हैं कि भूत-प्रेत के त्रास से हमारा घर रोगी हो गया है यह हम लोगों का भ्रम है; क्योंकि भूत-प्रेत तो घर की दूषित वायु ही हुआ करती है। वास स्थान बदल देने से हवा बदल जाती है और फलतः रोग छूट जाता है। वास्तव में स्वस्थ्य और वायु से इतनी घनिष्ठता है कि हवा का बदलना बुरा अथवा भला फल लाये बिना नहीं रहता। हवा बदलने के लिये धनी लोग तो दूर-दूर जा सकते हैं लेकिन

निर्धन लोग भी एक गाँव से दूसरे गाँव में जा सकते हैं और यदि यह भी न हो सके तो एक घर को छोड़कर दूसरे घर में तो जा ही सकते हैं। यदि रोगी को उसके कमरे से दूसरे कमरे में कर दिया जाय तो भी बहुत कुछ लाभ हो सकता है। हाँ, इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि नये बदले हुए स्थान की वायु स्वच्छ हो। इसी तरह उदाहरण के लिए जो रोग नम हवा के कारण उत्पन्न हुआ है यदि स्थान बदलकर हम उससे भी नम हवा में जाते हैं तो वह रोग कदापि नहीं छूट सकता। कभी-कभी हवा के परिवर्तन से कुछ लाभ नहीं होता। इसका मुख्य कारण यही है कि हम बदले हुए स्थान पर जाकर पूरी सावधानी नहीं रखते। इस प्रकरण में वायु के साधारण उपचार ही बतलाए गए हैं। लेकिन इसके पहले वायु प्रकरण में स्वच्छ वायु का स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका पूरा विवेचन किया गया है। इसलिए मैं अपने पाठकों को दोनों प्रकरणों को साथ-साथ पढ़ने की सलाह दूँगा।

११—जल-चिकित्सा

चूँकि हवा एक ऐसी वस्तु है जिसे हम देख नहीं सकते। इसलिए उसके किये हुए अद्भुत कामों को भी हम नहीं समझ पाते। लेकिन जल और उसकी चिकित्सा के लाभ को हम अच्छी तरह समझ सकते हैं। पानी के भाप-चिकित्सा को सभी जानते हैं। बुखार में अक्सर हम लोग उसका उपचार करते हैं। असह्य सिर दर्द में भी इसके उपचार से बहुत लाभ होता है। गठिया के

दर्द में पहले पानी का भाप देकर ठंडे पानी में स्नान करने से बहुत कुछ लाभ होता है शरीर के फोड़े-फुन्सी जो केवल मरहम पट्टी से नहीं आराम होते ठंडे पानी के प्रयोग से आराम हो जाते हैं।

थकावट को दूर करने के लिए यदि पहले भाप लेकर ठंडे पानी से स्नान किया जाय तो थकान दूर हो जाती है। ऐसे ही यदि नींद न आती हो तो पहले भाप लेकर ठंड पानी से स्नान कर यदि खुली हवा में आदमी सोवे तो शीघ्र नींद आ जाती है।

जहाँ पर भाप काम लाने को कहा है, वहाँ हम गरम पानी का प्रयोग कर सकते हैं। यदि पेट में दर्द हो तो गर्म पानी को बोतल में भर कर उसके ऊपर पतला कपड़ा लपेट कर यदि पेट पर रखा जाय तो शीघ्र दर्द आराम हो जाता है। जब कभी कै (उलटी) करने की आवश्यकता हो तो यदि पेट भर गरम पानी पी लिया जाय तो कै आसानी से हो जाती है। जिन्हें कब्ज का रोग है वे यदि सबेरे उठकर दाँतुन करने के पश्चात् गरम पानी पी लें तो दस्त खुलकर आती है। सर गार्डन स्प्रिंग जो कभी केप के प्रधान थे बहुत स्वस्थ थे। सोने के पहले या सोकर उठने के बाद वे गरम पानी पी लिया करते थे। कितने ही लोगों की ऐसी आदत है कि सबेरे गरम चाय पीने के बाद ही उन्हें दस्त आती है जिससे वे इस भ्रम में रहते हैं कि चाय की वजह से ही उन्हें दस्त आती है। लेकिन चाय से हानि होती है और दस्त लाने का मुख्य कारण चाय का गरम पानी है।

भाप लेने के लिये एक प्रकार का चौखटा होता है लेकिन उसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। बेंत की बुनी कुर्सी के नीचे स्पिरिट या किरासन तेल का चूल्हा या जलती लकड़ी या कोयले की छोटी अंगोठी रख ली जाय और उसके ऊपर एक छोटी सी पतीली पानी से भर कर और ढक्कन से ढँक कर

रख दी जाय, फिर कुर्सी के ऊपर एक कम्बल इस तरह रखे जिससे रोगी को आग की आँच न लगे। तब रोगी को उस कुर्सी पर बैठा दिया जाय और उसे एक कम्बल ओढ़ा दिया जाय इसके बाद पतीली का ढक्कन हटा दिया जाय ताकि जो भाप पतीली से से उठे रोगी को लगे। हम लोग प्रायः रोगी के सिर को कपड़े से ढके रहते हैं यह हानिकर है। भाप की गर्मी रोगी के बदन में होकर उसके सिर तक जाती है जिससे उसके शरीर से पसीना आने लगता है। यदि रोगी बहुत देर तक बैठ न सके तो उसे रस्सी या लोहे के पलंग पर लेटा कर भाप दे सकते हैं। भाप देते समय इस बात की सावधानी रखनी चाहिये कि कहीं रोगी या उसका कम्बल जल न जाय। साथ ही उसके स्वास्थ्य का भी काफी ध्यान रखना चाहिये क्योंकि भाप देने में जितना लाभ है उतनी ही हानि भी हो सकती है। भाप लेने के बाद रोगी को कुछ विशेष कमजोरी मालूम होती है। लेकिन यह कमजोरी थोड़ी ही देर रहती है। प्रति दिन भाप नहीं लेना चाहिए ऐसा करने से भाप लेने की बुरी टेव पड़ जाती है और कमजोरी बढ़ने लगती है। शरीर के किसी भी अवयव विशेष में भाप दिया जा सकता है। सिर दर्द में सारे शरीर में भाप की आवश्यकता नहीं है। सिर के ऊपर हल्का कपड़ा बाँध कर किसी तंग मुँह वाले बर्तन से नाक द्वारा भाप लेना चाहिये ताकि उसका प्रभाव सिर तक पड़े। यदि नथुने बन्द हो गये हों तो ऐसा करने से वे भी खुल जाते हैं। इसी तरह यदि किसी विशेष अंग में सूजन आ गई हो तो केवल उतने ही हिस्से पर भाप का प्रयोग करना चाहिये।

गरम पानी और भाप से जो लाभ होते हैं उसे प्रायः सभी जानते हैं, लेकिन ठंडे पानी के लाभ को बहुत कम लोग समझते हैं यद्यपि गरम पानी की अपेक्षा ठंडा पानी अधिक लाभ पहुँचाता है

और इसका प्रयोग कमजोर-से-कमजोर आदमी पर भी किया जा सकता है। ताप ज्वर, चेचक, या अन्य चर्मरोग में ठण्डे पानी में कपड़ा भिगोकर लपेटे रहने से बहुधा आश्चर्य्यजनक लाभ पहुँचता है। कोई भी मनुष्य इसकी परीक्षा कर सकता है इससे कुछ हानि भी नहीं होती। उन्माद तथा सन्निपात के रोगियों के सिर पर बर्फ में भिगोया हुआ कपड़ा रखने से बहुत कुछ शान्ति मिलती है। जिसे दस्त न आती हो वह यदि बर्फ में कपड़ा भिगोकर अपने पेट पर बांधे तो दस्त आ सकती है। यदि शरीर के किसी अंग से खून बहना बन्द न होता हो तो बर्फ के पानी में कपड़ा भिगोकर बाँधने से खून बन्द हो जाता है। नाक से खून (नकसीर) आता हो तो सिर पर ठण्डे पानी की धार गिराने से खून का आना बन्द हो जाता है। नाक में किसी तरह की बीमारी अथवा सिर दर्द क्यों न हो दोनों समय नाक से पानी खींचने से अच्छा हो जाता है। नाक का एक छेद बन्द कर दूसरे से पानी चढ़ाया जाय। फिर बन्द किये छेद के द्वारा बाहर निकाल दिया जाय अथवा दोनों छिद्रों से पानी ऊपर चढ़ाया जाय और मुँह के द्वारा निकाल लिया जाय। यदि नाक साफ हो तो ऐसा करते समय पानी मुँह से पेट के अन्दर चला जाय तो भी कोई हानि नहीं होती। नाक को साफ रखने का भी यह अच्छा तरीका है। जिनसे नाक द्वारा पानी ऊपर नहीं चढ़ाया जा सकता वे पिचकारी का प्रयोग कर सकते हैं; लेकिन दो चार बार कोशिश करने से वे भी नाक से ही पानी खींच सकते हैं। सब को इसका अभ्यास करना चाहिए क्योंकि यह एक सरल उपाय है और इससे सिर दर्द, नाक की मैल और बदबू बन्द हो जाती है। बहुत से लोग गुदा के द्वारा पेट में पानी चढ़ाते डरते हैं और कितने ही यह सोचते हैं कि ऐसा करने से शरीर निबल हो जाता है, लेकिन यह उनका भ्रम है। शीघ्र दस्त

लाने के लिए गुदा द्वारा पिचकारी लेने के सिवाय और कोई दूसरा उत्तम इलाज नहीं है। अनेक रोगों में जब कोई दूसरा इलाज काम नहीं करता तब यही लाभदायक सिद्ध होता है। इस क्रिया से शरीर का मल साफ हो जाता है और नया जहर नहीं जमता। जो लोग बात रोग, बादी, मेदे की खराबी इत्यादि से बीमार हों उन्हें गुदा द्वारा एक सेर पानी की पिचकारी लेनी चाहिये। इससे शीघ्र दस्त हो जायगा। इस विषय में एक लेखक लिखता है कि वह बदहजमी के चंगुल में पड़ गया था। उसने अनेक दवाइयाँ कीं, किन्तु उनसे कोई लाभ न हुआ बल्कि शरीर कमजोर होकर पीला पड़ गया अन्त में उसने पिचकारी लेना प्रारम्भ किया। इस प्रयोग के कुछ ही दिन बाद उसे खूब भूख लगने लगी और वह शीघ्र ही स्वस्थ हो गया। जिस बीमारी से शरीर पीला पड़ जाता है वह भी पिचकारी द्वारा अच्छी की जा सकती है अगर अधिक पिचकारी लेने की आवश्यकता पड़े तो ठण्डे पानी की लेनी चाहिए। गर्म पानी की पिचकारी से निर्बल होने की सम्भावना रहती है। लेकिन यह दोष पिचकारी का नहीं है।

जर्मन डाक्टर लुईकूने की यह राय है कि जल-चिकित्सा सब से उत्तम है। इस विषय पर लिखी हुई उसकी पुस्तकों की इतनी ख्याति बढ़ गई है कि दुनिया की प्रायः सभी भाषाओं में उनके अनुवाद हो गये हैं। हिन्दी भाषा में भी उनके अनुवाद हुए हैं। लुईकूने सिद्धान्त के अनुसार सब रोगों की जड़ मेदा है। जब इसमें अधिक गर्मी रहती है तो शरीर के बाहरी भाग में फोड़े, फुन्सी या दूसरे चर्म रोग हो जाते हैं। लुईकूने से पहिले के लेखकों ने भी जल-चिकित्सा पर अपनी राय दी है। "पानी का उपचार" नामक पुस्तक लूईकूने की पुस्तकों से बहुत पहिले लिखी जा चुकी थी। लेकिन लूईकूने से पहिले किसी ने भी यह नहीं

बताया कि रोग की जड़ मेदा है। हमें मानना पड़ेगा कि लूईकूने का सिद्धान्त बिलकुल ठीक है। मि० ट्रिटन जो डरबन के मजिस्ट्रेट थे धनुर्वात से बिल्कुल अपंग हो गये थे। उन्होंने अनेक औषधियों का सेवन किया किन्तु उससे कोई लाभ नहीं हुआ। अन्त में लूईकूने के इलाज से वे अच्छे हो गये। वह अधिक समय तक डरबन में सुख से रहे और सदा लोगों को लूईकूने के इलाज द्वारा लाभ उठाने की राय देते रहे। लूईकूने की पद्धति द्वारा इलाज करने वाली संस्था नैटाल में स्वीटवाटर्स नामक स्टेशन के समीप अब भी है।

डाक्टर लूईकूने लिखते हैं कि मेदा की गर्मी पानी से मिटती है। इसके लिये उसने ठंडे पानी से स्नान करना बतलाया है ताकि मेदे के आस-पास के भाग ठंडे रह सकें। आसानी से स्नान करने के लिये उसने एक प्रकार का टीन का टब बनाया है लेकिन इसके बिना भी हमारा काम चल सकता है। पुरुष या स्त्री के कद के अनुसार, ३६ इंच या उससे छोटा-बड़ा टीन का टब कुछ लम्बाई लिये गोल आकार का बाजार में बिकता है टब का चौथाई हिस्सा ठंडे पानी से भर कर उसमें रोगी को इस ढंग से बिठाना चाहिए कि उसका पैर और धड़ पानी से बाहर रहे। नाभी से लेकर जाँघ तक का हिस्सा पानी के भीतर रहे। सबसे अच्छा तरीका यह है कि पैर किसी लकड़ी के तख्ते पर रख दिए जायँ। रोगी को टब में नंगा बिठाना चाहिये। ठण्डक महसूस होने पर पर और धड़ कम्बल से ढक दिये जायं। ऐसी हालत में रोगी को कुर्ता इत्यादि भी पहनाया जा सकता है। लेकिन ये सब चीजें पानी के बाहर रहनी चाहिये। स्नान की जगह ऐसी होनी चाहिए जहाँ धूप और हवा अच्छी तरह पहुँच सके। रोगी को पानी के भीतर अपना पेट किसी खुरखुरे कपड़े से मलना चाहिये। यदि रोगी स्वयं ऐसा न कर सके तो उसे किसी दूसरे से मलवाना चाहिये।

यह स्नान पाँच से तीस मिनट तक वा इससे भी अधिक देर तक किया जा सकता है। इस स्नान का प्रभाव शीघ्र पड़ता है। वादी के रोगी को तो शीघ्र हवा खुलने लगती है, और डकार आने लगती है। दस्त साफ होने लगती है नींद न आनेवालों को नींद आने लगती है। अधिक सोने वालों के नींद में कमी आ जाती है और उनमें स्फूर्ति आ जाती है। बदहजमी से ही अतिसार तथा कोष्ठ-बद्ध के रोग होते हैं। इस बीमारी के लिए कूने का स्नान अति उत्तम है। पुरानी बवासीर इस स्नान से तथा खान-पान के परहेज से जाती रहती है। जो लोग अधिक थूकते हैं उनके लिए भी यह स्नान लाभदायक होता है। इस स्नान से कमजोर भी बलवान हो जाते हैं। बहुतेरों का गठिया तक अच्छा हो जाता है। सिर के दर्द में यदि यह स्नान किया जाय तो दर्द हल्का पड़ जाता है। इस स्नान से गर्भवती स्त्री की प्रसव-काल की पीड़ा कम हो जाती है। बालक, जवान, बुड्ढे, स्त्री-पुरुष सबके लिए यह स्नान लाभप्रद है।

एक और उपचार है जिसे "गीली चादर का उपचार" कहते हैं। इससे भी अनेक रोग दूर हो जाते हैं। एक मेज या कुर्सी को खुली हवा में रख दो। उस पर तीन-चार कम्बल बिछा दो। उन कम्बलों पर तीन चादरें ठंडे पानी में भिगा कर बिछा दो। इसके बाद रोगी को नंगे उस पर लेटा दो। रोगी का हाथ बगल में हो। इसके बाद एक एक करके सभी चादरें और कम्बलें रोगी के बदन में लपेट कर उसे अच्छी तरह से ढक दो। यदि धूप हो तो रोगी के मुँह पर गीला कपड़ा या रूमाल रख दो। लेकिन नाक खुली रहनी चाहिये। पहले तो रोगी काँप उठेगा, बाद में उसको गर्मी लग कर पसीना निकलेगा। यह उपचार पाँच मिनट तक करना चाहिये। फिर रोगी के बदन से कपड़े हटा कर ठंडे पानी से स्नान करा दो। बुखार, शीतला और चर्म रोग इससे दूर

ो जाते हैं। यह निश्चय है कि यदि स्वास्थ्य के नियमों का भली-
ाँति पालन किया गया, तो जल-चिकित्सा से रोगी तुरन्त अच्छा
ो सकता है।

१२--मिट्टी का उपचार

अब मैं मिट्टी के उपचार के विषय में कुछ बतलाऊँगा। सका उपचार कभी-कभी जल-चिकित्सा से भी बढ़कर आश्चर्य-नक चमत्कार दिखलाने में उपयुक्त सिद्ध हुआ है। मिट्टी में तनी शक्ति वर्तमान है कि यह सुनकर हमें चकित हो जाना ड़ता है क्योंकि हम लोगों का स्थूल शरीर भी इसी मिट्टी से बना । वास्तव में इसका प्रयोग हम पवित्रता की दृष्टि से करते हैं। रे गन्ध को मिटाने के लिए हम उस स्थान को मिट्टी से पोतते । हम सड़ी-गली वस्तुओं को मिट्टी से ढक देते है ताकि उसकी री गन्ध हवा को दूषित न करे। हम अपने हाथ और गुप्त न्द्रियों को भी इससे धोते हैं। योगी इसे अपने शरीर में मलते । कुछ लोग फोड़े-फुन्सियों को आराम करने के लिए इसका योग करते हैं। शव का मिट्टी के अन्दर गाड़ देते है ताकि सड़ने र उसकी बुरी गन्ध वायुमण्डल को दूषित न कर सके। इन सब ्याओं से यही साबित होता है कि मिट्टी के अन्दर स्वच्छता ीर आरोग्य प्रदान करने की शक्ति है।

जिस तरह डा० लूईकने ने जल-चिकित्सा के विषय में अनेक उप ागी बातें बतलायी हैं, उसी तरह एक जूस्ट नामक जर्मन डाक्टर ने ट्टी के उपचार के विषय में अनेक लाभ अनुभव करके इसकी पयोगिता का वर्णन किया है। उसने यहाँ तक बतलाया है कि हुत से असाध्य रोग इसके द्वारा आराम किये जा सकते । वह एक घटना का इस प्रकार वर्णन करता है कि किसी

आदमी को साँप ने काट लिया। सब लोगों ने उसको मरा हुआ समझ कर उसकी औषधि करनी छोड़ दी। लेकिन मैंने उसे थोड़ी देर तक मिट्टी से ढककर उसे जीवित कर दिया। इस घटना की सत्यता में कुछ सन्देह नहीं किया जा सकता। सभी जानते हैं कि जमीन में गाड़ने से अत्यधिक गर्मी उत्पन्न होती है। यद्यपि मैं यह नहीं कह सकता कि मिट्टी का प्रभाव उस पर किस तरह पड़ा, लेकिन मुझे मानना पड़ता है कि मिट्टी के अन्दर जहर खींच लेने की शक्ति है। हाँ, यह हो सकता है कि हरेक साँप का काटा हुआ इस प्रकार आराम न हो; फिर भी जब किसी को साँप काटे तो यह उपचार करना चाहिए। मैं अपने निजी अनुभव के आधार पर यह कह सकता हूँ कि बिच्छू या वैसे ही विषैले जीवों के काटने पर गीली मिट्टी का लेप बहुत लाभदायक होता है।

मैंने स्वयं इसका उपचार निम्नांकित रोगों में किया है। पेट, सिर, और आँख के दर्द एवं चोट की सूजन मिट्टी की पुलटिस से दो तीन दिन में आराम होती है। मैं पहले 'एनोज के 'फ्रूट-साल्ट' के बिना कभी निरोग नहीं रह सकता था लेकिन सन् १९०४ ई० में जब मुझे मिट्टी की उपयोगिता मालूम हुई तब मैंने उसका आश्रय लिया तब से आज तक कोई ऐसा अवसर नहीं आया जब कि मुझे फ्रूट साल्ट का प्रयोग करना पड़ा हो। कड़े-से कड़े ज्वर में इसकी पुलटिस सिर पर और पेडू में बाँधने से एक दो घंटे में ज्वर कम हो जाता है। चर्म रोग जैसे खुजली, दाद और फोड़े-फुन्सी इसके उपचार से शीघ्र आराम होते हैं। जले हुए स्थान पर इसका लेप करने से जलन कम हो जाती है और उस पर फफोले नहीं उठते। गर्मी का भी रोग इससे अच्छा हो सकता है। पाले से जब हाथ पैर लाल पड़ जाते हैं और सूज जाते हैं तब इसका प्रयोग बहुत लाभ पहुँचाता है। हड्डियों के जोड़ का

दर्द भी इससे आराम होता है। इन अनुभवों से मैं इसी परिणाम पर पहुँचता हूँ कि इसका उपचार घरेलू रोगों में बहुत ही लाभ-दायक सिद्ध हो सकता है।

यह बात अवश्य है कि सभी प्रकार की मिट्टी एक-सी उपयोगी और गुणकारी नहीं हुआ करती। जमीन खोदकर जो सुर्ख मिट्टी निकाली जाती है वह बहुत उपयोगी होती है। यह अधिक चिकनी नहीं होती। बालू मिली चिकनी मिट्टी सब से उत्तम है। जो मिट्टी प्रयोग में लाई जाय उसमें गोबर या दूसरी कोई खराब वस्तु न मिली हो। पहले मिट्टी को बारीक पीस कर चलनी से छान लेना चाहिये तब उसे ठंढे पानी में मिलाकर काम में लाना चाहिए। मिट्टी को अच्छी तरह आटे की भांति गूंध लेना चाहिए। और तब उसे स्वच्छ कपड़े में रख कर पुलटिस बना लेना चाहिये। प्रयोग के बाद जब मिट्टी सूखने लगे तो पुलटिस को हटा देना चाहिए। आमतौर पर एक पुलटिस दो से तीन घण्टे तक ठहर सकती है। एक बार प्रयोग की हुई मिट्टी दोबारा काम में नहीं लानी चाहिए। हाँ, उस कपड़े को खूब साफ करके फिर काम में ला सकते हैं। अगर पुलटिस पेट पर रखनी हो तो पहले उसे गरम कपड़े से ढँक देना चाहिए। तब उस पर मिट्टी चढ़ाना चाहिए। हरेक आदमी को चाहिए कि एक टीन स्वच्छ मिट्टी अपने पास रखे ताकि आवश्यकता पड़ने पर उसका प्रयोग आसानी से कर सके। ऐसा न हो कि किसी को बिच्छू काट दे और तब मिट्टी की तलाश की जाय। ऐसा करने से विष बदन में फैल जायगा। बिच्छू इत्यादि डंक मारनेवाले जानवरों के काटने पर जितना जल्दी मिट्टी का प्रयोग किया जायगा उतना ही शीघ्र लाभ होगा।

१३—ज्वर-चिकित्सा

अब हम कुछ खास रोग और उनकी औषधियों के विषय में विचार करेंगे और सब से पहले ज्वर के विषय में। क्योंकि इस बीमारी का हमारे यहाँ भयंकर प्रकोप रहता है। हमारे शरीर में हरारत के कारण जब ताप बढ़ जाती है तब हम उसे ज्वर या बुखार कहते हैं। अंग्रेज डाक्टरों के मतानुसार ज्वर कई प्रकार का होता है और वे उनकी औषधि भी अलग-अलग करते हैं। लेकिन इस प्रकरण में दिये हुए उपचार और औषधि के प्रयोग से हम लोग सभी तरह के ज्वर को आराम कर सकते हैं। मैंने हर किस्म के ज्वर में यहाँ तक कि प्लेग में भी एक ही तरह का उपचार किया है जिसका फल संतोषजनक हुआ है। सन् १९०४ ई० में दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों में बड़े जोरों का प्लेग फैला था। इसका प्रकोप इतना भयंकर हो गया था कि चौबीस घन्टे के अन्दर तेईस बीमार व्यक्तियों में इक्कीस मरे और शेष दो अस्पताल पहुँचाये गये जिनमें से एक अस्पताल में ही मर गया किन्तु दूसरा जिसके ऊपर मिट्टी की पुलटिस का प्रयोग किया गया था बच गया। हाँ, इतना अवश्य है कि इस घटना से हम निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकते कि वह मिट्टी ही के उपचार से बचा; लेकिन हर हालत में यह कहा जा सकता है कि इससे उसे कुछ हानि नहीं हुई। फेफड़े में सूजन हो जाने के कारण वे दोनों ज्वर से बेहोश थे। जिसके ऊपर मिट्टी का प्रयोग किया गया था उसकी अवस्था ऐसी खराब हो रही थी कि उसके मुँह से खून आ रहा था। मुझे बाद में डाक्टर से मालूम हुआ कि उस रोगी को बहुत कम खुराक दी जाती थी। वह भी केवल दूध की।

ज्वर अधिकतर मेदे की खराबी से उत्पन्न होता है। अतः

सबसे पहले रोगी को उपवास करना चाहिए। यह हम लोगों का भ्रम है कि उपवास से रोगी और भी कमजोर हो जायगा। हम लोग पहले ही पढ़ चुके हैं कि भोजन का वही भाग हमारे लिये लाभप्रद होता है जिससे खून बने, शेष भाग केवल मेदे को गन्दा किए रहता है। ज्वर की दशा में हमारी पाचनशक्ति कम हो जाती है। जीभ काली या सफेद पड़ जाती है और होंठ सूख जाते हैं। यदि ज्वर की दशा में रोगी को कुछ भोजन दिया जाय तो वह उसे हजम नहीं कर सकेगा और उसका ज्वर और भी अधिक बढ़ जायगा। उपवास करने से मेदे को भोजन पचाने का अवसर मिलता है इसी कारण रोगी को एक दो दिन उपवास करना चाहिए। साथ ही उसे लूईकूने के आदेशानुसार दिन में एक या दो बार स्नान कराना चाहिये। यदि वह अधिक निर्बल हो गया तो उसके पेट पर मिट्टी का पुलटिस बाँधनी चाहिए। अगर उसके सिर में पीड़ा हो तो भी मिट्टी की पुलटिस बाँधनी चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो, रोगी का सिर कपड़े से ढक कर उसे खुली हवा में रखना चाहिए। उसे खाने के लिए सिर्फ नींबू का रस गर्म पानी में मिलाकर देना चाहिए और जहाँ तक हो सके उसमें खाण्ड मिलानी चाहिए। यदि ऐसा करने से रोगी के दाँत खट्टे न पड़ें तो केवल यही पथ्य देने से बड़ा ही लाभ होता है। इसके बाद आधा या एक केला, एक चम्मच जैतून का तेल निंबू के रस में मसलकर देना चाहिए। अगर उसे प्यास लगे तो पानी को एक घंटा औटाने के बाद ठढा हो जाने पर देना चाहिए या निम्बू का रस देना चाहिए। पानी उबालकर ही देना चाहिए। ठण्डा पानी कभी भी नहीं देना चाहिए उसके पहिनने का वस्त्र भी साधारण और कम होना चाहिए और समय समय पर उसको बदलते रहना चाहिए। इस उपचार से टाइफाइड ज्वर वाले रोगी को भी आराम हो गया है और वह पूर्ण स्वस्थ हो गया है। कुनैन के प्रयोग से

भी रोग प्रत्यक्ष कम हो जाता है किन्तु इससे अन्य दूसरे रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मलेरिया रोग के लिये कुनैन बहुत उपयोगी है लेकिन मुझे मालूम है कि इससे चिरस्थायी लाभ नहीं होता। मलेरिया से पीड़ित रोगियों को उपरोक्त उपचार से पूर्णतः स्वस्थ होते मैंने देखा है।

बुखार की हालत में बहुत लोग केवल दूध पीकर रहते हैं। लेकिन मेरा अनुभव है कि वास्तव में बुखार के शुरू में दूध देने से हानि होती है। क्योंकि इसको पचाना कठिन है। यदि दूध देना ही हो तो उसे गेहूँ की बनी कहवा के साथ थोड़ा दूध और चावल का आटा मिलाकर उसे अच्छी तरह पका कर दिया जा सकता है। लेकिन अधिक ज्वर की दशा में इसे भी नहीं देना चाहिये। ऐसी अवस्था में निम्बू का रस बहुत ही गुणकारी होता है। ज्योंही रोगी की जीभ साफ हो जाय उसे उपरोक्त तरीके से केले का बनाया हुआ पथ्य दे सकते हैं। यदि रोगी को दस्त न आता हो तो गर्म पानी में सुहागा मिला कर पिचकारी देना चाहिए। उसके बाद जैतून के तेल का प्रयोग उसके मेदे को साफ कर सकता है।

१४—कब्ज, संग्रहणी, पेचिश, बवासीर

इस प्रकरण में एक ही साथ चार रोगों पर विचार किया जाता है। पाठकों को इसमें कुछ आश्चर्य मालूम होगा, लेकिन वास्तव में ये चारों रोग एक दूसरे से ऐसे सम्बन्धित हैं कि इनका उपचार करीब-करीब एक ही ढङ्ग से किया जा सकता है। जब खाद्य पदार्थ के न पचने से मेदा अधिक गन्दा हो जाता है तब इन रोगों में से कोई एक रोग मनुष्य के शरीर की अवस्था के अनुसार हो

जाता है। किसी को कब्ज हो जाती है, दस्त साफ नहीं आता, दस्त लाने के लिये उन्हें जोर लगाना पड़ता है जिससे अन्त में खून आने लगता है तथा बवासीर का मस्सा निकल आता है। किसी-किसी को संग्रहणी का रोग हो जाता है, किसी को पेचिस हो जाती है और पेट में दर्द के साथ आँव आने लगता है।

इन सभी अवस्थाओं में रोगी की भूख कम हो जाती है। उसका शरीर पीला और कमजोर होने लगता है। जीभ पीली पड़ जाती है और स्वांस से दुर्गन्ध आने लगती है। किसी-किसी के सिर में पीड़ा होने लगती है कब्ज का रोग इतना प्रचलित हो गया है कि उसके लिए सैकड़ों तरह की गोलियाँ और चूर्ण तैयार किये गये हैं। "मवर्स-सिगल-शिरप" फ्रूट-साल्ट इत्यादि इसी रोग की विशेष औषधि हैं। लाखों रोगी इसका प्रयोग करते हैं फिर भी रोग कम नहीं होता। साधारण से साधारण वैद्य या हकीम बतला सकता है कि अजीर्ण ही इस रोग का मूल कारण है तथा उसके निवारण का एकमात्र उपाय अजीर्ण को मिटाना ही है। सचमुच आजकल के विज्ञापनों में यहाँ तक लिखा रहता है कि "हमारी दवा में परहेज करने की आवश्यकता नहीं है। केवल दवा खाने ही से रोग दूर हो जायगा"। पाठकों को मालूम होना चाहिये कि इस तरह का विज्ञापन बिलकुल गलत है। जुलाब का प्रभाव बहुत बुरा होता है। मामूली जुलाब भी कब्ज को दूर कर शरीर में दूसरी जहर उत्पन्न कर देता है। जुलाब से भले ही कब्ज और संग्रहणी इत्यादि बीमारियाँ न हों लेकिन उससे कोई अन्य बीमारी होने की अवश्य सम्भावना रहती है। यदि उससे कुछ लाभ भी हो जाय तो रोगी मनुष्य के जीवन और रहन-सहन में परिवर्तन हो जाता है यदि कोई अपनी पिछली बुरी आदतों को छोड़ दे और फिर कभी भविष्य में जुलाब न ले तो कुछ लाभ हो सकता है। जुलाब लेने से पुराना रोग भले ही दूर हो जाय।

लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि उसी जगह अन्य रोग हो जायंगे।

पेचिस के रोगी का सबसे पहला यह काम होना चाहिये कि जहाँ तक हो सके भोजन की मात्रा कम कर दे ऐसे पदार्थ जैसे कि घी, खाण्ड, मक्खन वगैरह का तो उसे बिल्कुल ही परित्याग कर देना चाहिये। शराब, तम्बाकू, कल के आटे की रोटियाँ, भंग चाय, कहवा वगैरह तो उसे छूना भी नहीं चाहिये। उसका खाद्य पदार्थ मुख्यतः फल और जैतून का तेल होना चाहिये।

किसी औषधि का प्रयोग करने से पहले रोगी को ३६ घंटे तक उपवास करना चाहिये। उपवास के समय तथा उसके बाद मिट्टी की पुलिटिश उसके पेड़ू पर बाँधनी चाहिए और जैसे कि पहले कहा जा चुका है, डा० लूईकूने के मतानुसार उसे स्नान भी कराना चाहिए। रोगी को प्रति दिन दो घंटा टहलना चाहिए। मैंने कितने ही कब्ज, संग्रहणी, पेचिश और बवासीर के रोगियों को इस साधारण उपचार से नीरोग होते देखा है। हो सकता है कि बवासीर बिलकुल आराम न हो, लेकिन कम से कम उसका दर्द तो जाता ही रहेगा। पेचिश के रोगी को गर्म पानी में निम्बू के रस के सिवाय और कुछ नहीं खाना चाहिए, विशेषकर उस अवस्था में जब कि उसे आँव या खून आता हो। यदि पेट में अधिक मरोड़ आती हो तो गर्म पानी से भरी बोतल या गर्म किया हुआ ईंट के टुकड़े से पेट को सेंकना चाहिए इससे दर्द बिलकुल बन्द हो जाता है। रोगी को हर हालत में खुली हवा में रहना चाहिए।

कब्ज के रोगी को अंजीर, फ्रेंच पाम्स (बेर) बड़ा मुनक्का नारंगी, केला, किशमिश और हरी दाख बहुत लाभ पहुँचाती है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि भूख न रहने पर भी ये फल खाये जाँय। पेट में मरोड़ होती हो या मुँह का स्वाद बिगड़ गया हो उस हालत में तो ये फल भी हरगिज नहीं खाना चाहिए।

१५—छूत के रोग शीतला (चेचक)

अब हम छूत के रोगों के उपचार के विषय में कुछ विचार करेंगे। यों तो सभी छूत के रोग भयंकर ही होते हैं, लेकिन चेचक का रोग सबसे भयंकर होता है। इसलिये इसके सम्बन्ध में इस प्रकरण में विशेष रूप से विचार किया जायगा और शेष रोगों का दूसरे प्रकरण में।

हम लोग शीतला रोग से बहुत ही डरते हैं और इसके विषय में हमारे कितने ही भ्रमपूर्ण विचार हैं। हम हिन्दुस्तानी इसे देवी मान इसकी पूजा-पाठ करते हैं। वास्तव में इस रोग का कारण भी मेदे की खराबी है। मेदे की खराबी के कारण हमारा खून खराब हो जाता है। हमारे खून में विष पैदा हो जाता है। यही चेचक का मूल कारण है। जब यही कारण है तो हमें इससे डरने की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। यदि यह सर्वथा छूत का रोग होता तो दूसरे को भी रोगी के छूने मात्र से हो जाता, लेकिन सर्वथा ऐसा नहीं होता। यदि हम लोग सावधानी के साथ रोगी को छूवें तो कुछ भी नुकसान नहीं हो सकता। लेकिन साथ ही हमें इस बात का विश्वास नहीं कर लेना चाहिए कि रोगी के छूने से छूने वाले को यह रोग हो ही नहीं सकता। क्योंकि जिनके अन्दर वह विष पैदा हो जाता है उन्हें भी रोगी को छूने से यह रोग पैदा हो जाता है। यही कारण है कि जब कभी किसी मोहल्ले में इस रोग का प्रकोप होता है तो अधिकाश आदमी इसी रोग के रोगी हो जाते हैं और हमें भ्रम हो जाता है कि यह एक छूत की बीमारी है इसी आधार पर लोगों को यह समझा दिया जाता है कि यह छूत की बीमारी है, इस प्रकार लोगों को बहका कर टीका लगाया जाता है। उन्हें समझाया जाता है कि टीका लगाने से यह रोग नहीं होता। गाय के थन से चेचक का लस लगाकर

उसमें से निकले हुए पीब को चमड़े द्वारा हमारे शरीर में प्रवेश कर देने का नाम टीका है। कहा जाता है कि ऐसा कर देने से मनुष्य के शरीर पर शीतला निकल आती है और फिर आगे उन्हें महा शीतला का डर नहीं रहता।

लेकिन जब यह देखने में आया कि टीका लगाए हुए मनुष्य को भी चेचक निकल आती है तो एक नई सूझ निकाली गयी और कहा जाने लगा कि अमुक समय पश्चात् फिर टीका लगा लेना चाहिए, यहाँ तक कि आज कल सभी लोगों के लिये चाहे वे टीका लगवाये हों या नहीं, जब कभी उनके गाँव या मोहल्ले में चेचक का प्रकोप हो, टीका लगा लेना अनिवार्य है। अतः ऐसे बहुत मनुष्य मिलते हैं जो पाँच-पाँच, छः-छः या इससे भी अधिक बार टीका लगवाये हुए होते हैं।

टीका लेना एक जंगली रिवाज हैं। हमारे वर्तमान समय की यह एक हानिकारक प्रथा है। संसार की जंगली जातियों में भी यह प्रथा नहीं है। इसके अधिकारी, जो टीका नहीं भी लगवाना चाहते उन्हें कानूनी का भय दिखा कर टीका लगाने के लिये मजबूर करते हैं। यह बहुत पुराना आविष्कार नहीं है। बल्कि १७९८ ई० से ही यह प्रचलित है। लेकिन इतने थोड़े समय में ही लाखों मनुष्यों को यह विश्वास हो गया है कि टीका लगा लेने से चेचक के रोग से आदमी बच जाता है। ऐसा कोई नहीं कह सकता कि जिसे टीका नहीं लगाया गया है उसे अवश्य ही यह रोग होगा, क्योंकि बहुतेरे ऐसे मिलेंगे जिन्हें टीका बिलकुल ही नहीं लगाया गया है, और फिर भी वे इस रोग से बचे हैं। इससे हम कदापि यह नहीं मान लेंगे कि टीका नहीं लगाने से जिन्हें यह रोग हो गया है यदि वे टीका लगा लेते तो अवश्य ही इस रोग से बच जाते।

इसके अतिरिक्त यह एक बहुत ही गन्दी औषधि है। इस

में केवल गाय के थन की लस ही नहीं लगाई जाती बल्कि शीतला रोग से पीड़ित मनुष्य के घाव के लस को भी मिला कर लगाया जाता है। इस पीब (मवाद) को देखकर कितने तो कै कर देंगे। यदि हाथ से छू जाती है तो हाथ को साबुन लगा कर धोना पड़ता है यदि कोई हँसी में भी हमें पीब चखने को कहे तो हमारा जी मिचलाने लगता है हम क्रोध से भर जाते हैं और उससे लड़ने को तैयार हो जाते हैं। लेकिन जो टिका लगवाते हैं, उनमें से बहुत कम ऐसे हैं जो इस बात पर विचार करते हों कि वे वास्तव में पीब ही खा रहे हैं। बहुतेरे इस बात को जानते हैं कि अनेक रोगों में औषधि और पोषक पदार्थ खून में यन्त्र द्वारा भर दिया जाता है और वे अन्दर जाकर भोजन किए हुए पदार्थ से भी पहले और अति शीघ्र हमारे खून में मिल जाते हैं। इस प्रकार औषधि लेने में और मुँह से खाने में केवल इतना ही अन्तर है कि मुँह से खाई वस्तु देर से खून में मिलता है और यन्त्र द्वारा शीघ्र ही मिल जाती है तो भी हम टीका लेते जरा नहीं हिचकते। कहावत है कि डरपोक लोग मृत्यु के पहले कई बार मर चुके होते हैं। हमारी टीका लेने की इच्छा एकमात्र इस रोग से बचने और उससे कुरूप होने के भय से ही उत्पन्न होती है।

इस प्रकार टीका लेकर शरीर में पीब संचारित करवाना मेरे विचार में धार्मिक एवं सदाचार की दृष्टि से भी घृणित है। मांसाहारी लोग भी मरे हुए जानवरों का खून नहीं पीते फिर इस प्रकार जीवित प्राणी का खून और पीब खाने का तो प्रश्न ही नहीं उठाना चाहिए। जो ईश्वर से डरता है उसके लिये हजार बार चेचक का शिकार होना यहाँ तक कि मर भी जाना अच्छा है लेकिन इस प्रकार चमड़े द्वारा एक निरपराध जानवर के रक्त का पान करना अच्छा नहीं है।

टीका लगवाने से जो हानियाँ होती हैं उनके ऊपर इंगलैण्ड के

बहुत से विचारशील पुरुषों ने विचार किया है और उसके बहिष्कार के लिए एक अच्छी संस्था बनाई है इसके सदस्य खुले आम इसका विरोध करते हैं जिनमें बहुतों को जेल की सजा भी दी गई है। वे निम्नांकित आधार पर इसका विरोध करते हैं :—

(१) गाय या बछड़े के थन से पीब निकालने में उन जीवित पशुओं पर क्रूरता का व्यवहार किया जाता है मनुष्य को दयाशील होना चाहिये, इस प्रकार की घृणित क्रियाएँ उसके व्यक्तित्व के लिये कलंक स्वरूप है। ऐसी हालत में टीका लगाने से यदि उसे कुछ लाभ भी होता हो तो नहीं लगाना चाहिये।

(२) टीका से लाभ के बदले हानियाँ अधिक होती हैं, टीका लगाने के पहले जिन रोगों का नाम भी नहीं सुनने में आता था वे रोग अब प्रचलित हो गये हैं। इसके समर्थक भी इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि इसके आविष्कार के साथ ही साथ कई नये रोगों की भी उत्पत्ति हुई है।

(३) चेचक के रोगी के शरीर से जो लस लिया जाता है उसमें रोगी के अन्य-अन्य रोगों के कीड़े भी सम्मिलित रहते हैं जो टीका लेने वालों में प्रवेश करके प्रायः उन्हीं रोगों को उत्पन्न करते हैं।

(४) इस बात का निश्चय नहीं है कि जिसने टीका ले लिया है उसे चेचक का रोग होगा ही नहीं। इसके आविष्कारक डा० जेनर की पहले यह धारणा थी कि केवल एक बार बाजू पर टीका लगाने से चेचक का रोग नहीं होता; लेकिन यह जब उनका भ्रम साबित हुआ तब उन्होंने दोनों बाजुओं पर टीका लगवाने की प्रथा आरम्भ की। जब यह भी गलत हुआ तब दोनों बाजुओं पर कई स्थानों पर लगाया जाने लगा। साथ ही यह भी कहा जाने लगा कि सात वर्ष पश्चात् इसे फिर से लेना चाहिए।

क्योंकि सात वर्ष पश्चात् इससे मुक्ति पाने की कोई गारण्टी नहीं दी जा सकती। लेकिन अब तो तीन ही वर्ष के पश्चात् इसे लगाने की प्रथा निकली है। इन सब बातों से यही सिद्ध होता है कि डा० लोग स्वयं इससे सन्तुष्ट नहीं हैं। सच बात तो यह है कि यह नहीं कहा जा सकता कि टीका लगवाए हुए मनुष्य को यह रोग कभी होगा ही नहीं, अथवा जिन्हें यह रोग हो जाता है वह टीका न लेने ही के कारण होता है।

(५) अन्त में हम यह दावे के साथ कहते हैं कि लस एक गन्दी तथा दूषित पदार्थ है। ऐसी हालत में कोई भी यह मानने को तैयार नहीं होगा कि गन्दगी से गन्दगी दूर होती है और यदि हम ऐसा मानते हैं तो यह हमारी निरी मूर्खता है।

उस संस्था ने दलीलों के सिवाय और भी अनेकों उदाहरण पेश करके लोगों को टीका लगवाने के विरुद्ध अपने पक्ष में कर लिया है। अंग्रेजों की बहुत ऐसी बस्तियाँ हैं जहाँ के अधिकांश लोग टीका नहीं लगाते और फिर भी वे इस रोग से बचे हैं। टीके को जारी रखने की अनुमति डाक्टरों की स्वार्थ सिद्धि के लिए है। क्योंकि उन्हें प्रजा की ओर से लाखों रुपये इस काम के लिए मिल जाते हैं। इसी स्वार्थ ने उनकी आँखों पर पट्टी दे रक्खी है जिसके कारण वे टीका से उत्पन्न बुराइयों को नहीं देख पाते। हाँ, कुछ ऐसे भी डाक्टर हैं जो इससे उत्पन्न बीमारियों को मानते हैं और इसके विरुद्ध हैं।

जो इसके सच्चे विरोधी हैं उन्हें चाहिए कि टीका न लेने के कारण उन पर जो कुछ भी कानूनी दण्ड लगाया जाय, उसे सहन करें। जो स्वास्थ्य की दृष्टि से इसका विरोध करते हैं, उन्हें इस विषय की काफी जानकारी रखनी चाहिए ताकि वे अपना अनुभव दूसरों को भलि-भाँति समझा सकें। लेकिन वे जिन्हें न तो इसकी काफी जानकारी ही है और न उनमें इतनी शक्ति ही है

कि वे उसके प्रचलित नियमों का उलंघन कर सकें वहाँ के कानून ही के अनुसार चलना चाहिए।

जो स्वास्थ्य के विचार से टीका नहीं लेना चाहते उन्हें स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का अक्षरशः पालन करना चाहिये। जो लोग टीका लेना नहीं चाहते लेकिन विषय-भोग द्वारा सदा उसका रस लेते हैं या आरोग्य सम्बन्धी नियमों को भंग करते हैं, उन्हें समाज या देश सम्बन्धी नियमों के विरुद्ध जहाँ टीका लेना स्वास्थ्य के लिये आवश्यक माना जाता हो, आचरण करने का कोई अधिकार नहीं है।

अब तक तो हमने शीतला पर लगने वाले टीका के दोषों का वर्णन किया। अब हम शीतला के कुछ उपचार बतायँगे। जो लोग जल, वायु, भोजन के प्रकरण में बताए हुए नियमों के अनुसार चलेंगे उन्हें तो यह बीमारी होगी ही नहीं और यदि किसी को चेचक निकल आवे तो सबसे उत्तम महौषधि "वेट-शीट-पैक" पानी से भींगी हुई चादर का बाँधना ही है। इसे दिन में कम से कम तीन बार बाँधना चाहिये, इससे ज्वर कम हो जाता है और घाव शीघ्र भर जाते हैं। घावों पर मरहम पट्टी अथवा तेल लगाने की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। यदि सम्भव हो तो मिट्टी की पुलटिस एक दो स्थान पर, जहाँ बाँधने योग्य हो, बाँध देना चाहिये। रोगी को खाने के लिये चावल और हल्का फल देना चाहिये जिसमें नींबू का रस मिला हो। भारी खाद्य पदार्थ जैसे कि बादाम और खजूर बिलकुल नहीं देना चाहिए। हफ्ते के अंदर घाव उपरोक्त गीली चादर वाले उपचार से भर जाते हैं। यदि ऐसा न हो तो समझना चाहिये कि अभी शरीर का जहर निकल रहा है। चेचक को एक भयंकर रोग समझने की अपेक्षा यह समझना अच्छा है कि प्रकृति देवी हमारे शरीर में एकत्रित विष को इस रोग द्वारा निकाल कर हमें स्वास्थ्य प्रदान कर रही हैं।

शीतला रोग दूर हो जाने पर भी कितने रोगी बहुत कमजोर
ा किसी अन्य रोग में ग्रसित देखे जाते हैं। इसका मुख्य कारण
वक से छुटकारा पाने के लिए किए गए गलत गलत उपचार
। ज्वर में बहुतों को कुनैन के सेवन से बहिरापन हो जाता है
र कभी-कभी संज्ञाशून्य (बहरापन विशेष) का भी रोग
जाता है। व्यभिचार से उत्पन्न होने वाले रोगों में पारा का
ोग किया जाता है, फल यह होता है कि पारा उस रोग को
ा कर अन्य अनेक रोग पैदा कर देता है जिसे आजन्म भोगना
ता है। दस्त साफ न होने पर दस्त लाने वाली औषधियों को
र-बार सेवन करने से बवासीर हो जाती है। उपरोक्त बातों
पता चलता है कि अयोग्य औषधियों के सेवन से बीमारी
टने की अपेक्षा और कितनी ही नयी-नयी बीमारियाँ पैदा हो
ती हैं। अतः रोगों का उपचार बहुत सोच समझ कर करना
हिए। वे ही उपचार लाभदायक हैं, जो रोग को जड़ से हटा दें
र स्वास्थ्य पर कोई हानि न पहुँचे। बहुमूल्य भस्म भी जो रोगों
लिए रामबाण औषधि समझे जाते हैं बहुधा हानिकारक सिद्ध
े हैं; क्योंकि यद्यपि वे गुणकारी प्रतीत होते हैं, लेकिन वे काम
उत्तेजित करते हैं। फलतः स्वास्थ्य को बिगाड़ देते हैं।

यदि चेचक के रोगी को उपरोक्त साधारण उपचार किया
य, तो केवल रोग ही नहीं दूर होगा बल्कि रोगी शीघ्र स्वस्थ
कर आजन्म इस रोग से मुक्त हो जायगा।

चेचक हट जाने पर जब दाने सूखने लगें तो रोगी के शरीर पर
रा "ओलिभ आयल" जैतून के तेल की मालिश करनी चाहिए
ं उस रोज स्नान कराना चाहिए। इससे घाव की झूर्रियाँ शीघ्र
र जाती हैं; दाग मिटने लगते हैं और चमड़ा पहले जैसा होने
ाता है।

१६—छूत के अन्य दूसरे रोग

छोटी शीतला से हम उतना नहीं डरते जितना की उसकी बहन बड़ी शीतला से। क्योंकि हम सोचते हैं कि यह उतना घातक नहीं है और न इससे रोगी कुरूप ही होता है। लेकिन यह भी एक प्रकार का चेचक ही है और इसका भी उपचार उसी तरह करना चाहिए जिस तरह शीतला का किया जाता है। शीतला, छोटी शीतला के सिवा, प्लेग, कालरा या हैजा और उड़ती पेचिस भी छूत के रोगों में शामिल हैं।

प्लेग एक भयंकर रोग है। अंग्रेजी में इसे "ब्यूवानिक प्लेग" कहते हैं। यह रोग पहले-पहल हमारे देश में सन् १८९६ ई० में उत्पन्न हुआ और तब से अबतक इसने असंख्य आदमियों को मृत्यु की गोद में सुला दिया है। इससे छुटकारा पाने के लिए डाक्टरों ने अनेकों औषधियों का आविष्कार किया है, लेकिन फिर भी इसकी समुचित औषधि तैयार नहीं हो सकी है। आज-कल प्लेग का एक टीका निकला है और लोगों की धारणा हो रही है कि इसके लगाने से रोग का आक्रमण नहीं होता। लेकिन प्लेग का टीका भी उतना ही हानिकारक और धार्मिक दृष्टि से पापमय है, जितना कि चेचक का टीका। यद्यपि इस रोग के लिए कोई औषधि विशेष रूपसे तैयार नहीं हो सकी है फिर भी हम उन लोगों के लिए जिन्हें प्रकृति में पूर्ण विश्वास है तथा जो मृत्यु से नहीं डरते, निम्नलिखित उपचार करने की सलाह देंगे।

(१) ज्योंही ज्वर शुरू हो, पानी से भिगी चादर 'वेट-शीट-पैक' का प्रयोग करना चाहिए।

(२) गाँठ (गिल्टी) निकलने पर मिट्टी की मोटी पुलटिस बाँधना चाहिए।

(३) रोगी को पूर्ण उपवास करना चाहिए।

(४) यदि उसे प्यास मालूम हो तो ठंडे पानी में नीबू का रस मिला कर देना चाहिए।

(५) उसे खुली हवा में सुलाना चाहिए।

(६) रोगी के निकट एक से अधिक व्यक्ति को उसकी देख-रेख के लिए नहीं रहना चाहिए।

हम विश्वास दिला सकते हैं कि यदि प्लेग किसी उपचार से च्छा हो सकता है तो वह इस उपचार से और भी शीघ्र अच्छा सकता है।

यद्यपि इस रोग की उत्पत्ति के मुख्य कारण का अभी तक पता हीं लग सका है। फिर भी लोगों का आम ख्याल है कि इस रोग ो अधिकतर चुहे फैलाते हैं। अतः हमें चूहों से हर तरह की ावधानी रखनी चाहिए, हमें अपने घरके खाने-पीने के सब ामान ढककर रखना चाहिए जिससे चूहों को वहाँ खाने की असु-धा हो और वे वहाँ से दूसरी जगह चले जायँ यदि किसी हल्ले में प्लेग का प्रकोप हो गया हो और बहुत प्रयत्न करने पर चूहों से हम अपना पिण्ड न छुड़ा सकें तो हमें चाहिए कि उस र को कुछ दिनों के लिए खाली कर दें।

प्लेग के आक्रमण से बचने का सबसे अच्छा उपाय स्वास्थ्य म्बन्धी नियमों का पालन करना है। हमें खुली हवा में सोना ाहिए। साधारण तथा पोषक पदार्थ थोड़ी मात्रा में खाना चाहिए वं घर को साफ-सुथरा रखना चाहिए। नित्य-नियमित रूप से ायाम करना चाहिये। हर तरह के व्यसन छोड़ देने चाहिए ौर यथासाध्य साधारण जीवन व्यतीत करना चाहिए यों तो हमें ा ढंग से सदैव ही रहना चाहिए। लेकिन यदि हम सदैव ऐसा कर सकें तो कम-से-कम प्लेग के दिनों में तो विशेष सावधानी नी ही चाहिये।

सन्निपातिक ज्वर इससे भी भयंकर होता है। यह शीघ्र

आक्रमण करता है। और बहुत ही घातक होता है। रोगी को अधिक ज्वर हो जाता है स्वाँस लेने में उसे कष्ट मालूम होता है और कभी-कभी वह बेहोश हो जाता है। इस किस्म का रोग पहले-पहल जोहेन्सवर्ग में सन् १९०४ ई० में शुरू हुआ था। इस बारे में पहले कहा गया है कि तेईस रोगियों में केवल एक बच सका था इस पर प्रायः वे सभी उपचार प्रयोग में लाये जा सकते हैं जो 'ब्यूवानिक प्लेग' पर काम में लाये जाते हैं, अन्तर इतना ही है कि पुलटिस को इस रोग में सीने के दोनों बगल मे बाँधना चाहिए। यदि 'वेट-शीट-पैक' के प्रयोग करने का मौका न मिले तो पतली पुलटिस सिर में बाँधना चाहिए। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस रोग का उपचार करने से पहले इसके रोकने की व्यवस्था करनी चाहिए। प्लेग और इसके रोकने में प्रायः एक से ही उपचार काम में लाये जातें हैं।

हम लोग कालरा या हैजा (महामारी) से भी उतना ही डरतें हैं जितना कि प्लेग से, लेकिन यह रोग इतना भयानक नहीं हैं। इस रोग में 'वेट-शीट-पैक' से कुछ लाभ नहीं होता। मिट्टी की पुलटिस रोगी के पेट पर बाँधना चाहिए। जिस अङ्ग में सनसनी मालूम होती हो उसे गरम पानी को बोतल से सेंकना चाहिए। पाँव में सरसों का तेल मलना चाहिए और रोगी को उपवास करना चाहिए। रोगी को घबड़ाहट न मालूम हो इसको सावधानी रखनी चहिये। यदि उसे दस्त जल्द-जल्द आता हो तो उसे बार बार बिस्तरे से नहीं उठाना चाहिए। बल्कि एक चौड़े मुँह का बर्तन चारपाई के नीचे दस्त इकट्ठा करने के लिए रख देना चाहिए। यदि इस रोग में पहले से ही सावधानी रखी जाय तो खतरे का डर नहीं रहता। यह रोग बहुधा गर्मी के दिनों में हुआ करता है क्योंकि गर्मी के दिनों में हम हर किस्म के कच्चे-पक्के फल खाते हैं। पानी भी उन दिनों में प्रायः गन्दा ही होता है और

म उसी पानी को पीते हैं, क्योंकि उन दिनों में कुएँ का पानी म हो जाता है, हम लोग पानी को उबाल कर अथवा छान कर हीं पीते। रोगी के पाखाने को भी खुला छोड़ देते हैं जिसका ल यह होता है कि रोग के कीड़े हवा में फैलते हैं। वास्तव में ब हम इस पर बिचार करते हैं तो हमें मालूम होता है कि उप-क्त विषयों पर हमारा बहुत कम ध्यान रहता है फिर भी हम इन गों से वञ्चित रहते हैं यह आश्चर्य की बात है।

अब हमें उन बातों पर विचार करना चाहिए जिनकी जान-री कालरा के दिनों में हमारे लिए आवश्यक है। हमें उन दिनों का भोजन करना चाहिए। स्वच्छ हवा में साँस लेनी चाहिए। पानी हम पीते हैं सदैव उबाल कर, मोटे कपड़े से छानकर ना चाहिये। रोगी का पाखाना राख या मिट्टी से ढक देना हिए। पाखाने को राख या मिट्टी से ढकने की क्रिया तो हमें दैव बिना रोक टोक के करनी चाहिए। ऐसा करने से रोग के लने का कम डर रहता है। बिल्ली गढा खोद कर पाखाना करती और उसे ढक देती है, लेकिन हम लोग उससे भी बदतर हैं। योंकि हम घृणा अथवा छूआछूत के फेर में पड़ कर ऐसा न करके बीमारी को फैलाते हैं और हजारों मनुष्यों को मृत्यु के मुख डाल देते हैं।

जिन लोगों को छूत का रोग हो गया हो उनके पास रहने लों को चाहिये कि वे हर तरह रोगी को विश्वास दिलायें कि य की कोई बात नहीं है। क्योंकि भय उत्पन्न होने ही से अक्सर गी को हानि पहुँचती है।

१७—सौरी और बच्चा

पिछले प्रकरणों के लिखने का मेरा उद्देश्य यही है कि साधारण रोगों के कारण और उनके उपचार का कुछ ज्ञान प्रायः सर्वसाधारण को हो जाय। हमें पूर्ण विश्वास है कि वे मनुष्य जिन्हें सर्वदा कोई न कोई रोग घेरे ही रहते हैं और जो मृत्यु के नाम से डरते हैं उनको किसी तरह की पुस्तक क्यों न दी जाय, वे डाक्टरों की शरण लिये बिना कदापि नहीं रहेंगे हालांकि मैं इसके विरुद्ध हूँ। मैं यह भी कह सकता हूँ कि बहुत थोड़े लोग ऐसे होंगे जो प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा अपने रोगों को अच्छा करके सर्वदा के लिए रोगमुक्त होने का उद्योग करते हैं। जो ऐसा करेंगे उन्हें इस बात का अनुभव होगा कि इन उपचारों और नियमों से बहुत लाभ होता है। इस पुस्तक को समाप्त करने के पहले हम कुछ मोटी-मोटी बातें और बच्चे की देख-रेख के विषय में बतलायेंगे। साथ ही कुछ आकस्मिक घटनाओं के बारे में भी लिखेंगे।

पशुओं के बारे में हम कुछ नहीं जानते कि प्रसवकाल में उन्हें कुछ पीड़ा होती है या नहीं। किन्तु पूर्ण स्वस्थ स्त्री को तो प्रसरकाल में पीड़ा होनी चाहिए। देहात में बहुतेरी स्त्रियाँ प्रसव की पीड़ा की कुछ परवा नहीं करतीं और अन्तिम समय तक अपना काम करती हैं। बहुतेरी मजदूरी करने वाली स्त्रियों को प्रसव के थोड़े ही दिन बाद मजदूरी करते देखा जाता है। तब क्या कारण है कि शहर और कस्बे की स्त्रियों को ही प्रसव के समय इतनी पीड़ा होती है? क्या कारण है कि उन्हें प्रसव के पूर्व और पश्चात् उपचार की विशेष आवश्यकता पड़ती है।

उत्तर बहुत आसान और स्पष्ट है। शहर की स्त्रियों को अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उनका खान-पान, रहना-सहन साधारणतः स्वास्थ्य-सम्बन्धी प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध

ा करता है। इसके अतिरिक्त वे असमय गर्भ धारण करती हैं र प्रसव के बाद शीघ्र ही पुरुषों का शिकार हो जाती हैं। ः उन्हें कब्जीयत का रोग हो जाता है। हमारे देश की खों कन्याओं और स्त्रियों की यह अवस्था हो रही है। मेरे वार से ऐसा जीवन नर्क से भी बुरा है। जब तक पुरुष ऐसा ाविक आचरण करते रहेंगे हमारी स्त्रियाँ सुखी नहीं रह ती। बहुत से लोग इस दोष को स्त्रियों के मत्थे मढ़ते हैं, लेकिन किसका दोष है इस पर विचार करने के लिए हमें यहाँ स्थान ीं है। हमें केवल बुराइयों को देखना है और उससे छुटकारे उपाय बतलाना है। सभी विवाहित स्त्री-पुरुष को यह याद ना चाहिये कि तब तक वासना की तृप्ति की बुरी टेव, खास छोटी उम्र में गर्भ धारण कर लेने की बुरी प्रथा और बच्चा होने के बाद ही सम्भोग करने की आदत छूट न जायगी तक प्रसव की पीड़ा दूर नहीं हो सकती। स्त्रियाँ प्रसव की ड़ा को चुप-चाप सहन करती हैं यह नहीं सोचती कि स्वयं की इच्छा से ही ऐसा होता है उनकी संतान दुबली-पतली र कमजोर हो जाती है। प्रत्येक स्त्री-पुरुष का कर्तव्य है कि वे ने को इस विपत्ति से बचावें। कम से कम यदि एक भी स्त्री-व इसका पालन करें तो इसका यह मतलब होगा कि वे अपना दर्श दिखला कर संसार को पतित अवस्था से उठा रहे हैं। यह ऐसा आवश्यक विषय है कि इसके लिये एक को दूसरे की ीक्षा नहीं करनी चाहिए।

उपरोक्त बातों से यही प्रतीत होता है कि गर्भ ठहर जाने के र पुरुष को स्त्री प्रसंग नहीं करना चाहिये और नौ मास तक स्त्री के ऊपर विशेष जिम्मेदारी रहती है। उसकी इस सन्तान भविष्य सर्वथा उसके इस नौ महीने की रहन-सहन पर भर करता है यदि वह अच्छी-अच्छी वस्तुएँ पसन्द करेगी तो

भविष्य में उसकी होने वाली सन्तान भी उन्हीं वस्तुओं को पसन्द करेगी। यदि वह क्रोध करेगी या उसके अन्दर बुरी-बुरी भावनायें उत्पन्न होंगी तो उसकी सन्तान भी क्रोधी तथा बुरी भावनावाली होगी। अतः इस नौ महीने की अवधि में उसे चाहिए कि वह अच्छे-अच्छे कार्य करे, व्यर्थ की चिन्ताओं को छोड़ दे, कोई बुरी वासना अन्दर न आने दे, कभी झूठ न बोले और एक पल भी बेकार एवं बुरी बातों में न बितावे। ऐसी माता की सन्तान अवश्य ही बलवान और पराक्रमी होगी।

गर्भिणी को अपने शरीर और विचार को पवित्र रखना चाहिए। उसे स्वच्छ वायु में रहना चाहिये। उसे साधारण और पुष्टिकर पदार्थ उतनी ही मात्रा में खाना चाहिए जिसे वह सुगमता से पचा सके। यदि भोजन संबन्धी सभी नियमों का वह पालन करेगी तो उसे डाक्टर की सहायता की कोई आवश्यकता नहीं होगी यदि उसे दस्त की शिकायत हो तो उसके भोजन में जैतुन के तेल की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। यदि उसे कै आवे या जी मिचलाता हो तो पानी में निम्बू का रस मिलाकर लेना चाहिये उसमें खाण्ड नहीं मिलाना चाहिये। गर्भावस्था के नौ महीनों में हर हालत में मसाला एवं बघार बिलकुल छोड़ देना चाहिए।

गर्भावस्था में स्त्रियों को नयी-नयी वस्तुओं के प्राप्ति की इच्छा होती है ऐसी हालत में उन्हें डा० लूईकूने के बतलाये हुए तरीके से स्नान करने से लाभ होता है। इससे उनका स्वास्थ्य और उत्साह बढ़ता है एवं उन्हें प्रसव की पीड़ा नहीं मालूम होती। गर्भावस्था में उनको अपने मन पर अधिकार रखना चाहिए। ज्यों ही किसी वस्तु की इच्छा पैदा हो उसे शीघ्र दबा देना चहिये। माता-पिता को चाहिये कि वे सदा गर्भस्थ बच्चे की रक्षा के लिये सावधानी रक्खें।

पुरुष का कर्तव्य है कि वह ऐसी अवस्था में स्त्री को शांतमय

जीवन व्यतीत करने दे। किसी प्रकार की लड़ाई झगड़ा उससे न करे और सदा उसको प्रसन्न-चित्त रखने की कोशिश करे। उसे घरेलू परिश्रम का काम न करने देना चाहिये। और रोज थोड़ी देर तक खुली हवा में टहलने देना चाहिये। इस अवस्था में किसी प्रकार की जड़ी-बूटी या औषधि कदापि न देनी चाहिए।

१८—शिशु-पालन

इस प्रकरण में हम धाय के सभी कर्तव्यों का वर्णन नहीं करेंगे बल्कि यही बतलायेंगे कि शिशु-पालन कैसे किया जाता है। जो पिछले प्रकरणों को पढ़ आये हैं उन्हें यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि बच्चे को अन्धेरे कमरे में जहाँ रोशनी न जाती हो, मैले कुचैले कपड़ों पर, चारपाई के नीचे आग रख कर सुलाना हानिप्रद है। यह रिवाज चाहे कितना पुराना क्यों न हो—बहुत बुरा तथा हानिकारक है। हाँ, जाड़े के दिनों में बच्चे को गर्म रखने के लिए कम्बल ओढ़ा सकते हैं। यदि कमरा अधिक ठंडा हो तो आग जलानी चाहिए, लेकिन आग बाहर जलानी चाहिये और जब उसमें से धुआँ निकलना बन्द हो जाय तब अन्दर लानी चाहिए, लेकिन फिर भी उसके चारपाई के नीचे नहीं रखना चाहिए। गर्म पानी से भरे बोतलों को उसके चारपाई पर रखकर गर्मी पहुँचाई जा सकती है। बच्चा पैदा हो जाने पर सब कपड़े और चादरों को साफ कर देना चाहिए और तब उसे प्रयोग में लाना चाहिए।

चूँकि बच्चे का स्वास्थ्य उसकी माँ के स्वास्थ्य पर निर्भर करता है अतः उसके भोजन में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। यदि उसे गेहूँ की बनी चीजें, केला औलिभ आयल (जैतून का तेल) खाने को दिया जाय तो उसे काफी गर्मी और ताकत मालूम

होगी और उसे काफी दूध भी उतरता है, जैतून का तेल सेवन करने से माँ के दूध में एक विष शक्ति पैदा हो जाती है जिसके पीने से बच्चे का दस्त साफ आती है इस तरह बच्चा भी रोग से बचा रहता है। यदि बच्चा बीमार हो जाय तो उसको माँ के स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना चाहिये। बच्चे को दवा देना उसे जानबूझ कर मारना है। क्योंकि उसका मेदा नाजुक होता है। जिससे दवा का जहर शीघ्र फैलता है। अतः जो कुछ औषधि देनी हो माता को देनी चाहिए। औषधि का गुण उसकी माता के दूध में आकर बच्चे को लाभ पहुँचाता है। यदि बच्चे को कफ हो जाय या दस्त आवे तो डरने की कोई बात नहीं है। हमें एक दो दिन देख-लेना चाहिये और उसके कारण का पता लगाना चाहिए। कारण मालूम हो जाने पर छुटकारे का उद्योग करना चाहिए। एक ब एक इसके लिये दौड़ धूप कर दवा दारू करने से और भी खराबी पहुँचेगी।

बच्चे को गुन-गुने पानी से स्नान कराना चाहिए। उसका वस्त्र यथासाध्य कम और पतला हो और यदि हो सके तो बिलकुल न पहनाये जायँ। बच्चे को मोटे कपड़े पर सुलाकर गर्म चादर से ढके रहना चाहिए। इससे कपड़े पहिनाने की आवश्यकता पूरी हो जायगी और कपड़े भी गन्दे होने से बचेंगे एवं बच्चा भी बलवान होगा। नाल के ऊपर कपड़े को चौपरता बनाकर रख दें और ऊपर से उसे दूसरे कपड़े से मुलायम बाँध दें। नाल पर तागा बाँधकर उसे गले में लटकाने की प्रथा हानिकर है। नाल की पट्टी को खोलते रहना चाहिए। यदि नाल के इर्द-गीर्द नमी मालूम पड़े तो बारीक पीसा हुआ स्वच्छ चावलों का आटा छान कर रूई के द्वारा उस पर छिड़क देना चाहिए।

जब तक बच्चे को माँ का दूध काफी मिलता हो उसे उसी पर रखना चाहिए। लेकिन जब कुछ कम पड़ने लगे तो भूने हुए गेहूँ

ो पीसकर गर्म पानी और थोड़ा सा गुड़ मिलाकर पिलाने से ध ही के ऐसा लाभ होता है। आधा केले को खूब मसल लिया ाय और उसमें एक चम्मच जैतून का तेल मिला कर देने से ड़ा लाभ होता है। अगर गाय का दूध देना हो तो एक भाग ध से तीन भाग पानी मिलाकर गरम करे। जब एक उबाल आ ाय तो थोड़ा सा गुड़ मिला दे (मगर खाँड़ नहीं) तब वह दूध ना चाहिए। बच्चे को धीरे-धीरे फल खाने की आदत डालनी ाहिए ताकि शुरू ही से उसका खून साफ रहे और वह सुन्दर ौर बलिष्ट हो। वे मातायें जो अपने बच्चों को दाँत जमते ही न्हें चावल, दाल और शाक खिलाने लगती हैं उन्हें बहुत हानि हुँचाती हैं। चाय और कहवा तो बिलकुल ही नहीं देना ाहिए।

जब बच्चा कुछ बड़ा होकर घुटनों के बल चलने लगे तो उसे ुरता या ऐसा ही कोई दूसरा वस्त्र पहनाना चाहिए, लेकिन सका पाँव नंगा ही रखना चाहिए। ताकि वह अपनी इच्छा नुसार इधर-उधर घूमता रहे जूता पहना देने से खून का दौरा ुक जाता है और पाँव तथा पैर के मजबूत होने और बढ़ने में ुकावट पैदा होती है। सुन्दरता बढ़ाने के लिये बच्चों को रेशमी ा बेल-बूटेवाले वस्त्र पहनाना, टोप, कोट या जेवर पहनाना एक हुत ही बुरी प्रथा है। प्रकृति ने बच्चे को जो प्राकृतिक सुन्दरता ी हो, हमें अपने परिश्रम और प्रयत्नों से उसे बढ़ाने की चेष्टा करनी चाहिए। दिखावे के लिये बच्चों का बनाव शृङ्गार करना हमारी अज्ञानता का सूचक है। हमें सदा याद रखना चाहिए कि बच्चे की शिक्षा उसके जन्म-काल ही से आरम्भ हो जाती है। उनके सच्चे शिक्षक तो माँ-बाप ही होते हैं। माँ-बाँप के रहन-सहन का प्रभाव बच्चे पर पड़ता है। उन्हें डराना, धमकाना, सजा देना और उनके शरीर पर आभूषण लादना, उन्हें ठूँस ठूँस कर

बिछाना आदि बातें शिक्षा के नियमों के विरुद्ध हैं। जैसे कि पुरानी कहावत है कि "माता-पिता ही का गुण लड़कों में आता है" यदि माता-पिता की चाल-ढाल और रहन-सहन सादा होता है तो बच्चा भी वैसा ही होता है यदि वे नाजुक मिजाज के होते हैं तो बच्चा भी प्रायः वैसा ही हो जाता है। यदि वे सत्य और स्पष्टवादी हैं तो बच्चा भी वैसा ही होता है। यदि वे तुतला कर बोलते हैं तो वह भी वैसे ही बोलने लगता है। यदि बुरे शब्द का प्रयोग करते हैं और उनमें कुछ बुरी टेव पड़ गई हैं, तो बच्चा भी उसी का अनुसरण करता है। तात्पर्य यह है कि मां-बाप का कोई भी काम ऐसा नहीं, जिसको बच्चा करने न सीख जाय। बड़े-बड़े विद्वानों का यह कहना है कि मां-बाप के पास रह कर बच्चे को जो शिक्षा मिलती है वह फिर कभी नहीं मिलती।

अब हम लोग समझ गये कि मां-बाप की जिम्मेदारी बच्चे के प्रति कितनी भारी है उनका मुख्य कर्त्तव्य है कि वे बच्चे को ऐसी शिक्षा दें जिससे वह सत्यवादी, ईमानदार और अपने समाज का आभूषण बन जाय। पशु और फल वगैरह के विषयमें भी हम यही देखते हैं कि जो जिस नस्लका है प्रायः उनसे उत्पन्न पशु या फल भी उन्हीं जैसे होते हैं। केवल मनुष्य ही प्राकृतिक नियम भंग करता है। यह मानव-समाज ही में देखा जाता है कि नेकचलन मनुष्य की सन्तान बदचलन होती और बलवान की सन्तान प्रायः निर्बल हो जाती है। उसका कारण यह है कि हम बिना समझे बूझे मां-बाप बन जाते हैं जब कि हम उस पद के योग्य नहीं होते। मां-बाप का यह अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वे अपने बच्चों का उचित रीति से पालन-पोषण करें यह तभी सम्भव हो सकता है जब माँ-बाप दोनों ही स्वयं उचित शिक्षा प्राप्त किये हों। जो माँ-बाप इस तरह की शिक्षा से वंचित हैं, उनका यह कर्त्तव्य होता है कि वे अपने बच्चों को किसी योग्य अभिभावक की देख-

में रख दें। ऐसा विश्वास करना निरी मूर्खता है कि बच्चों
केवल स्कूल भेज देने ही से वे सदाचारी बन जायेंगे। सदा-
बनने के लिये उन्हें अच्छी संगति में रखना आवश्यक है।
शिक्षा स्कूल में दी जाती है वह घरेलू शिक्षा के बराबर बच्चे
असर नहीं कर सकती। यह बात पहले ही बतलायी गई है
मुख्य शिक्षा जन्म-काल ही से प्रारम्भ होती है। खेलने के समय
बच्चों की बुद्धि का विकास होता है और उन्हें शारीरिक,
सिक एवं धार्मिक शिक्षा मिलने लगती है, बचपन में माँ-बाप से
-खेलते बच्चा अक्षर तथा गिनती का ज्ञान प्राप्त कर सकता
बच्चों को स्कूल भेजने की प्रथा थोड़े ही दिनों से प्रचलित हुई
यदि माँ-बाप बच्चों के प्रति अपने कर्त्तव्य का उचित पालन करें
समें सन्देह नहीं कि बच्चे बहुत ही उच्चकोटि के होंगे। लेकिन
बात तो यह है कि हम लोग बच्चों को अपने मनोरंजन की
ामग्री समझ बैठते हैं। उनके शरीर को सुन्दर वस्त्रों से
ी हैं और उन्हें आभूषण पहनाते हैं। हम उन्हें बहुधा
ई का लालच देते हैं और बचपन ही में लाड़-प्यार करके
बिगाड़ देते हैं। अपने अनुचित लाड़-प्यार के कारण उन्हें
त्र छोड़ रखते हैं और उनके कामों में रोक टोक नहीं करते।
हम लोग स्वयं कंजूस, कामी, बेईमान, आलसी और गन्दे
इसमें आश्चर्य की क्या बात है अगर हमारे बच्चे भी वैसे
लची, निर्बल, स्वार्थी, आलसी, कामी एवं दुराचारी होते
परोक्त बातों पर विचारवान माँ-बाप को ध्यान देना चाहिए।
क उन्हीं के ऊपर हमारे देश का भविष्य निर्भर है।

१६—कुछ आकस्मिक घटनाएँ

डूबना—अब हम उन आकस्मिक घटनाओं की ओर ध्यान देंगे तथा उनके उपचार के विषय में कुछ बतलायेंगे। जिनका प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ ज्ञान रखना आवश्यक है ताकि समय पड़ने पर वे अपनी तथा दूसरों की कुछ सहायत कर सकें और बहुँतों का अमूल्य जीवन बचा सकें। बालकों को भी इनका उपचार सिखलाना चाहिए। ताकि बड़े होने पर वे दयालु हो सकें।

पहले हम डूबे हुए मनुष्य का उपचार बतलायेंगे। हवा के बिना मनुष्य पाँच मिनट से अधिक नहीं जीवित रह सकता है। डूबते हुए मनुष्य को बाहर निकालने पर उनके अन्दर कुछ प्राण का संचार रहता है। अतः शीघ्रातिशीघ्र उसे होश में लाने का प्रयत्न करना चाहिये। इसके लिये दो कामों का करना आवश्यक है। पहला—उसके अन्दर श्वाँस आने जाने का प्रयत्न किया जाय। दूसरा—उसे गर्मी पहुँचाई जाय। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि पहला काम नदी या तालाब के किनारे ही करना पड़ता है जहाँ पर कि सब आवश्यक वस्तुओं का मिलना कठिन है। खास कर यह उपाय तभी किया जा सकता है जब कि वहाँ दो तीन आदमी और हों। सहायक के लिए यह आवश्यक है कि वह समय-सूचक, धैर्यवान, और फुर्तीला हो। क्योंकि यदि वह स्वयं घबड़ा उठेगा तो वह कुछ भी मदद नहीं कर सकेगा। ऐसे ही यदि सहायक-गण उपचार के विषय में वाद-विवाद करने लगें तो उस मनुष्य के बचने की कम आशा रहती है। उनमें सबसे अधिक जानकारी रखने वाले को चाहिए कि वह अन्य सहायकों को बतलावे और सहायकों को चाहिए कि वे उसकी आज्ञानुसार कार्य्य वाही करें।

डूबे हुए मनुष्य को ज्योंही पानी से बाहर निकाला जाय उसका बदन अच्छी तरह पोंछ दिया जाय, उसके भीगे कपड़ों को उसके बदन से अलग कर देना चाहिए। तब उसके दोनों हाथों को उसके सिर के नीचे कर उसे पट (औंधा) सुला देना चाहिए। अपने हाथ को उसकी छाती पर रख उसके मुँह से पानी और मिट्टी वगैरह निकाल देना चाहिये। अब उसकी जीभ बाहर निकल आयेगी उसे रूमाल से पकड़ लेना चाहिये और तब तक पकड़े रहना चाहिये जब तक कि वह होश में न आ जाय। होश में आते ही उसके सिर और छाती को पाँव से कुछ ऊपर कर उसे सीधा कर देना चाहिये। एक सहायक को उसके सिर की तरफ घुटनों के बल बैठकर धीरे-धीरे उसके हाथों को फैला देना चाहिये। ऐसा करने से उसकी पसलियाँ उठेंगी और स्वाँस आने-जाने लगेगा। इसके अलावा गर्म और ठंडे पानी को हाथ में लेकर उसके सीने पर छिड़कते रहना चाहिये। यदि आग मिल सके तो उससे उसको गर्मी पहुँचाना चाहिये। इसके बाद जहाँ तक कपड़े मिल सकें उसको पहिना देना चाहिये जिससे उसके शरीर में गर्मी पहुँचे। ये सब उपचार पूर्ण आशा के साथ देर तक करना चाहिए। कभी-कभी तो यह घण्टों तक करना पड़ता है तब स्वाँस आती है। ज्यों ही स्वाँस का आना आरम्भ हो, कुछ गर्म पदार्थ पिलाना चाहिए। निम्बू का रस गर्म पानी में या तज, लौंग और काली मिर्च का काढ़ा पिलाने से बहुत लाभ होगा। तम्बाकू सुँघाने से भी उसे लाभ पहुँचता है। बेकार आदमी को उसके चारों तरफ नहीं घेरे रहना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से स्वच्छ वायु बीमार को नहीं मिलती। अतः इन बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

नीचे लिखे चिन्ह ऐसे रोगी के मर जाने के हैं:—

यदि स्वाँस का आना जाना रुक जाय, हृदय और फेफड़ों की

धड़कन बन्द हो जाय। मोर के पंखे को उससे नाक के समीप रखने पर यदि जरा भी न हिले, शीशे को उसके मुँह के पास रखने पर यदि उस पर भाप न जमे, आँखें अधखुली रह जायँ, पलकें मोटी पड़ जायँ, अंगुलियाँ टेढ़ी पड़ जायँ, जबड़े जुट जायँ, जीभ दाँतों के बीच में आ जाय, मुँह में फेन आ जाय, नाक लाल हो जाय और सब शरीर पीला पड़ जाय तो समझना चाहिये कि रोगी मर गया। कभी-कभी इन लक्षणों के होते हुए भी प्राण रहता है। जब उसकी लाश सड़ने लगे तभी उसके मरने का निश्चय होता है। अतः रोगी को शीघ्र ही मरा न समझना चाहिये बल्कि बहुत देर तक उसकी सेवा करने के बाद ही उसकी आशा छोड़नी चाहिए।

जलना—कभी-कभी हम लोग किसी के कपड़े में आग लग जाने से घबड़ा उठते हैं और उसे सहायता देने के बदले अपनी मूर्खता के कारण उसे और भी विपत्ति में डाल देते हैं अतः ऐसी अवस्था में हमारा क्या कर्तव्य है यह जानना आवश्यक है।

जिस व्यक्ति के कपड़े में आग लग गयी हो उसे घबड़ाना नहीं चाहिए। यदि आग कपड़े के एक ही किनारे को पकड़ी हो तो उसे शीघ्र ही हाथ से बुझा देना चाहिए। लेकिन यदि समूचे या अधिक कपड़े में पकड़ ली हो तो उसे शीघ्र ही जमीन पर लेट कर लोटने लगना चाहिए। यदि कोई गलीचे जैसा मोटा कपड़ा मिले तो शीघ्र उसके बदन में लपेट देना चाहिए यदि पानी नजदीक हो तो शीघ्र उसके ऊपर गिरा देना चाहिए। ज्यों ही आग बुझ जाय हमें देखना चाहिए कि कहीं उसका अङ्ग तो नहीं जल गया है। जले हुए स्थान में बहुधा कपड़ा चिपक जाता है ऐसी हालत में हमें उसे जोर लगा कर नहीं छुड़ाना चाहिए। बल्कि धीरे से वस्त्र को कैंची से काट लेना चाहिए ताकि जले हुए स्थान पर कुछ असर न पड़े और वहाँ का चमड़ा न सिमट जाय इसके बाद

घ ही उस स्थान पर मिट्टी की पुलटिस बाँधनी चाहिए। इससे तन कम होकर रोगी को आराम मिलेगा जले हुए स्थान पर हाँ कपड़ा छिपटा हो वहाँ भी पुलटिस बाँधनी चाहिए। जब टिस सूखने लगे तो उसे तुरन्त बदल देना चाहिए। ठंडे पानी उपयोग से भी कोई हानि नहीं होती।

जो मनुष्य जलने पर यथा समय उपरोक्त उपचार न कर सके उनके लिये निम्नाङ्कित उपचार बहुत लाभदायक होंगे—केले ताजे पत्ते पर जैतून या सरसों का तेल चुपड़ कर जली हुई ह में बाँधना चाहिए पत्ते के अभाव में पतले कपड़े का प्रयोग सकते हैं। अलसी के तेल में चूने का पानी बराबर मिला कर ाने से लाभ होता है। जले स्थान पर चिपके कपड़े को दूध पानी से तर कर धीरे-धीरे निकाल सकते हैं तेल की पहली दो दिन बाद हटाना चाहिए और उसके बाद रोज बदलना हिए। यदि फफोले उठ आये हों तो उन्हें धीरे-धीरे फोड़ देना हिये, लेकिन चमड़े को नहीं हटाना चाहिए।

यदि आँच लगने के कारण चमड़ा केवल सुर्ख हो गया हो तो ल मिट्टी की पुलटिस ही लाभप्रद होगी। यदि अंगुलियाँ जल हों तो पुलटिस बाँधते समय इस बात की सावधानी रखनी हिए कि वे एक दूसरे से सटी न हों। तेजाब से जलने पर भी उपचार करना चाहिये।

सर्प का काटना—सर्प के विषय में हम लोगों के भ्रम का कुछ काना नहीं है। बहुत दिनों से हम लोग इससे डरते आये हैं। ाँ तक की उसके नाम को सुनते ही हम काँप उठते हैं। हिन्दू ा इसकी पूजा करते हैं और इस पूजन के लिए एक खास दिन त किए हुए हैं जिसे नागपञ्चमी कहते हैं। उनकी यह धारणा कि पृथ्वी शेषनाग पर अवलम्बित है। भगवान् विष्णु को शेष-

शायी अर्थात् शेषनाग पर सोने वाला कहते हैं। शिव को शेष नाग की ही माला पहने हुए मानते हैं। हम लोग बहुधा ऐसा कहा करते हैं कि अमुक वस्तु का वर्णन सहस्र-मुख वाले शेषनाग से भी नहीं हो सकता है। इससे यह मालूम होता है कि हम लोग शेषनागको विशेष बुद्धिमान मानते हैं। ऐसा कहा जाता है कि राजा नल को करकोटक साँप ने काट खाया था जिसके जहर के प्रभाव से वे कुरूप हो गए थे और उन्हें बनवास के समय कोई नहीं पहचान सका क्रिश्चियन लोगों के पवित्र एवं धार्मिक पुस्तक बाइबिल में भी कुछ प्रसंग आया है। अंग्रेजी में बहुधा कहा करते हैं कि अमुक आदमी सर्प के मानिन्द चुस्त चालाक है। बाइबिल में लिखा हुआ है कि "शैतान ने हऊवा बीवी को ललचाने के लिए सर्प का रूप धारण किया था।"

साँप से डरने का वास्तविक कारण यह है कि साँप के काटने से उसका विष शरीर में तुरत फैल जाता है जिससे आदमी शीघ्र मर जाता है। चूँकि मृत्यु का नाम ही भयानक है, अतः साँप से हमारा डरना स्वाभाविक है। वास्तव में हम डर ही के कारण सर्पों की पूजा किया करते हैं। यदि वह छोटा जीव होता तो इतना भयंकर होने पर शायद हम उसकी पूजा नहीं करते, लेकिन चूँकि वह एक बड़ा और प्राणघातक जीव है, इसी से हम उसे पूजते हैं।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों का यह कहना है कि सर्प में कोई विशेष बुद्धि नहीं है अतः जहाँ मिले वहीं इसे मार डालना चाहिए। सरकारी गणना से हमें पता चलता है कि साँप के काटने से हर साल हिन्दुस्तान में करीब बीस हजार आदमी मरते हैं। जहरीला साँप मारने पर सरकार से इनाम मिलता है। लेकिन हमें यह देखना चाहिए कि इस प्रथा से देश को कुछ लाभ पहुँचा है या नहीं। अनुभव से पता लगा है कि साँप एकाएक किसी को नहीं

टता है बल्कि छेड़ने पर काटता है। क्या इससे यह सूचित
नहीं होता कि साँप में बुद्धि होती है ? सम्भव है यह बुद्धि का
चिन्ह न माना जाय लेकिन इससे वह निर्दोष अवश्य सावित
होता है। अपनी रक्षा के लिये वह अपने दाँतों को काम में लाता
है। मनुष्य भी बहुधा यही करते हैं। हिन्दुस्तान या किसी देश
को साँप-रहित करने का प्रयत्न हवा से लड़ने के समान है। किसी
खास स्थान में सर्पों का आना रोका जा सकता है। उन्हें मार
डालने पर अन्य साँप वहाँ नहीं आवेंगे। लेकिन अधिकांश हिस्से
में ऐसा नहीं किया जा सकता हिन्दुस्तान जैसे विशाल देश में
सर्पों को समूल नष्ट कर देने का प्रयत्न कभी भी सफल नहीं हो
सकता।

हमें कभी भी नहीं भूलना चाहिए कि सर्पों को भी उसी
ईश्वर ने पैदा किया है जिसने हमें और अन्य जीवों को पैदा
किया है। हम ईश्वर के सभी कार्यों को नहीं समझ सकते
ईश्वर ने शेर, सर्प, बिच्छू इत्यादि को हमारे मारने के लिए नहीं
पैदा किया है। अगर सभी सर्प मिल कर एक सभा करें और
आपस में यह तय करें कि आदमी को ईश्वर ने इसी लिए पैदा
किया है कि वे जहाँ कहीं भी दिखाई पड़े उन्हें मार डाला जाय
क्योंकि वे भी हमारे साथ ऐसा करते हैं तो क्या हम लोग
कभी इस बात को मानने के लिये तैयार होंगे, कदापि नहीं ?
इसी तरह हम लोगों की धारणा है कि सर्प मनुष्य के दुश्मन हैं
और उन्हें जहाँ पाओ मार डालो।

एसीसी का रहने वाला फ्रांसिस एक बहुत बड़ा फकीर और
त्यागी हो गया है। वह प्रायः जंगलों में ही रहा करता था और
जहाँ जहरीले सर्प तथा भयंकर जानवर रहते थे वहीं घूमता
करता था। लेकिन कभी किसी सर्प ने उन्हें नहीं काटा और न
किसी जंगली जीव ने ही उसे कुछ नकसान पहुँचाया। फ्रांसिस

तो यहाँ तक कहता है कि वे उसके साथ मित्रवत व्यवहार करते थे। ऐसे ही हजारों फकीर और योगी हिन्दुस्तान के जंगलों में रहते हैं जहाँ शेर, चीते और सर्प बहुतायत से होते हैं। लेकिन कभी भी यह सुनने में नहीं आता कि वे उन जीवों द्वारा मारे गये हैं। यह कहा जा सकता है कि वे अवश्य मारे जाते होंगे लेकिन चूँकि वे हम लोगों से दूर रहते हैं अतः हम लोग उनके मारे जाने की खबर नहीं सुन पाते। ठीक है, मगर जो योगी जंगलों में रहते हैं उनकी संख्या उन जंगली सर्पों की तुलना में नहीं के बराबर है। यदि वे मनुष्य के स्वाभाविक बैरी होते तो कभी के उनका नाम निशान मिटा दिये होते। खास कर ऐसी अवस्था में जब कि उन योगियों के पास अपनी रक्षा के लिए कोई भी अस्त्र-शस्त्र नहीं रहते। लेकिन हम देखते हैं कि उनका नाश नहीं हुआ है और वे अब भी जंगलों में आराम से रहते हैं। इससे पता चलता है कि यद्यपि वे स्वेच्छापूर्वक जंगलों में विचरते हैं लेकिन कभी किसी से छेड़-छाड़ नहीं करते। इससे मैं इसी परिणाम पर पहुँचता हूँ कि जब तक मनुष्य उनके ऊपर दया नहीं दिखलायेंगे तब तक वे भी उन पर कदापि दया नहीं दिखला सकते। प्रेम मनुष्य की महान् शक्ति है। बिना इसके ईश्वर की पूजा भी सार्थक नहीं होती। सारांश यह कि प्रेम ही सब धर्मों की जड़ है।

इसके अतिरिक्त सर्प या अन्य जीवों को क्रूर स्वभाव और उनकी उत्पत्ति को हमी लोगों की क्रूरता का फल क्यों न माना जाय? क्या हम लोग उनसे कम हिंसक हैं? क्या हम लोगों की जबान उन्हीं के जबान जैसी विषैली नहीं है? क्या हम लोग अपने भाई-बन्धुओं का उन्हीं के ऐसा शिकार नहीं बनाते? इन सब बातों से यही प्रतीत होता है कि जब मनुष्य दूसरे को नुकसान पहुँचाना छोड़ देंगे, अन्य जीव-जन्तु

ी अपनी हिंसक प्रवृत्ति छोड़ देंगे और हमारे साथ मित्रवत् हने लगेंगे। जब हमारे ही अन्दर सिंह और बकरी की लड़ाई दैव चलती रहती है तो इसमें क्या आश्चर्य है यदि शरीर रूपी सार में भी ऐसा ही युद्ध हुआ करे। मनुष्य जीवन ही संसार सब जीवों में आदर्श माना गया है अतः जब हम लोग अपने भाव को बदल डालेंगे तो दुनियाँ के सभी जीव भी अवश्य ही पने स्वभाव को बदल डालेंगे जो मनुष्य अपने स्वभाव को स्वयं ल लेता है उसके लिये दुनिया बदल जाती है। ईश्वर को ष्टि तथा हमारी प्रसन्नता का यही रहस्य है हमारी प्रसन्नता ल हमारे ही ऊपर निर्भर करती है और इसके लिए हमें दूसरों अवलम्बित नहीं रहना चाहिए।

सर्पों के काटने पर उसके उपचार के विषय में लिखने की क्षा सर्पों के विषय में इतना अधिक लिखने का यही कारण क हम लोगों का भय उनसे मिट जाय। यदि इस पुस्तक के वालों में से एक भी—जो मैं अब तक लिखता आया हूँ, अनुसार चलेगा तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा। अतिरिक्त इतने पृष्ठों के लिखने का मेरा मतलब केवल वैज्ञा- कल्पनाओं को ही दर्शाना नहीं है, बल्कि उसके मूल-तत्व ढ़ना है और लोगों को आरोग्य-सन्देश देने पर विचार है।

आधुनिक आविष्कारों से भी पता चलता है कि उस मनुष्य जो पूर्ण स्वस्थ है, जिसका खून गर्म है और जिसका भोजन रण तथा सात्विक है, साँप का जहर जल्दी असर नहीं । जिसका खून दूषित और भोजन सात्विक नहीं है उस हर का असर शीघ्र होता है। एक डाक्टर का कहना है कि नुष्य नमक नहीं खाता और जिसका मुख्य भोजन फल है, खून इतना स्वच्छ होता है कि उसके ऊपर किसी भी विष

का असर नहीं पड़ता। लेकिन मुझे स्वयं इस बात का अनुभव नहीं है कि यह कहाँ तक सत्य है जिस मनुष्य ने केवल एक-दो वर्ष से नमक खाना छोड़ दिया है उसका खून इस योग्य नहीं हो सकता, क्योंकि पहले के खाये हुए नमक से उसका खून इतना दूषित हो गया है कि वह इतने थोड़े दिनों के नमक परित्याग से शीघ्र शुद्ध नहीं हो सकता।

वैज्ञानिक दृष्टि से देखा गया है कि जिसे अधिक भय या क्रोध हो जाता है, उस पर विषका प्रभाव भी शीघ्र पड़ता है। सभी जानते हैं कि डर या क्रोध की अवस्था में मनुष्य की नाड़ी और हृदय में पहले की अपेक्षा अधिक धड़कन पदा हो जाती है और नसों में खून का दौरा वेग से होने लगता है। वेग से दौरा होने के कारण खून में अधिक गर्मी पैदा हो जाती है जिससे मनुष्य के स्वास्थ्य पर धक्का पहुँचता है। क्रोध वास्तव में एक प्रकार का ज्वर है। अतः साँप के विष की सब से उत्तम औषधि कम मात्रा में सात्विक भोजन, बुरे भाव जैसे क्रोध-भय का परित्याग और ईश्वर पर पूर्ण भरोसा रखकर उचित उपचार करना ही है।

पोर्ट-एलिजावेथ अजायब घर के डाइरेक्टर फिट्जसीम जिन्होंने अपना अधिकांश समय सर्पों के विषय में जानकारी प्राप्त करने में व्यतीत किया है और जो इस विषय के ज्ञाता कहे जाते हैं, जिन्होंने साफ साफ बतला दिया है कि साँप के काटे मनुष्य की मृत्यु अधिकांश में उनके भय और अनुचित औषधियों के प्रयोग से होती है।

हमें याद रखना चाहिए कि सभी सप एक जैसे विषैले नहीं होते और न सभी विषैले सर्पों के काटने से विष का शीघ्र प्रभाव ही होता है। इसके अलावा काटते समय इतना अवकाश सर्पों

ा नहीं मिलता कि वे रोगी के शरीर में अपने विष की थैली को ड़ेल दें। इसलिए यदि हमें जहरीला साँप भी काट ले तो हमें रना नहीं चाहिए, क्योंकि उसकी औषधि बहुत ही लाभप्रद ौर सुलभ है, जिसका प्रयोग हम बिना किसी की सहायता के यं कर सकते हैं।

जिस स्थान में साँपने काटा हो उससे थोड़े ऊपर खूब खींच र बाँध देना चाहिए और एक लकड़ी या मजबूत पेन्सिल से त दे देना चाहिए। ऐसा करने से विष शरीर में फैलने नहीं पाता ब एक पतले बारीक चाकू से उस स्थान को आध इंच गहरा ट देना चाहिए ताकि विषैला खन बाहर निकल आवे। इसके द काटे हुए स्थान में लाल या काला पाउडर जो बाजारों में कता है और जिसे परमेगनेट ऑफ पोटास कहते हैं उसी को र देना चाहिये। यदि यह नहीं मिले तो खन को स्वयं या किसी सहायता से मुँह से चूँस कर निकाल देना चाहिए। जिसके ठ या जीभ पर घाव हों उसे नहीं चूसना चाहिए। यह उपचार टने पर सात मिनट के अन्दर अन्दर करना चाहिए जिससे हर बदन में न फैलने पावे। जैसे कि पहले ही बताया गया कि एक जर्मन डाक्टर का जो इस रोग के लिए सिद्धहस्त माना ता है कहना है कि रोगी को ताजी मिट्टी से ढक देना चाहिए। ापि मिट्टी के पुलटिस का प्रयोग मैंने इस विषय में नहीं किया फिर भी उसमें मेरा पूर्ण विश्वास है, क्योंकि इसके लाभ को मैं न्य रोगों में भी अनुभव कर चुका हूँ। पोटास लगाने वा खून तने के बाद मिट्टी की पुलिटिस, जो आधी इञ्च मोटी हो, बाँध ा चाहिये। हर एक घर में अच्छी पिसी और सुखाई हुई ट्टी एक टीन में प्रयोग के लिए तैयार रखनी चाहिये। इसे इस ार रखें कि इसमें सूर्य की धूप और हवा लगती रहे और नर्म होने पावे। पट्टी के लिए कपड़ा भी रखना चाहिये। ताकि

जब आवश्यकता पड़े तुरन्त मिल जाय। यह केवल साँप के काटने पर ही काम न देगा बल्कि अन्यान्य रोगों में भी काम देगा।

यदि रोगी बेहोश हो गया हो या उसका स्वाँस चलना बन्द हो गया हो तो स्वाँस संचार करने की क्रिया जो डूबने के विषय में बतलाई गई है काम में लानी चाहिये। गर्म पानी, तज और लौंग का काढ़ा होश में लाने के लिए बड़ा उपयोगी होता है। रोगी को खुली हवा में रखना चाहिए। लेकिन यदि उसका शरीर ठंडा मालूम हो तो गर्म जल से भरी बोतलों को प्रयोग में लाना चाहिए या फलालैन का टुकड़ा गर्म पानी में भिगोकर उसके बदन पर मलना चहिए ताकि बदन में गर्मी आ जाय।

बिच्छू का काटना—यह कहावत प्रसिद्ध है, 'ईश्वर न करे कि किसी को बिच्छू काटे' इस बात से भी सिद्ध होता है कि इसका काटना कितना दुःखदाई होता है। वास्तव में इसका दर्द साँप से कहीं बढ़कर होता है। लेकिन हम लोग इससे डरते नहीं क्योंकि इससे मृत्यु का डर नहीं रहता। डा० मूर का कहना ठीक ही है कि जिसका खून स्वच्छ है उस पर इसके विष का असर नहीं होता।

इसका उपचार बहुत साधारण है, बिच्छू के काटे हुए स्थान को काट कर खून निकाल देना चाहिए। काटे हुये स्थान से कुछ ऊपर खींच कर बाँधना चाहिये। इसके बाद उस पर मिट्टी की पुलटिस बाँध देनी चाहिये इससे दर्द शीघ्र जाता रहेगा।

कुछ लेखकों का कहना है कि सिरका और पानी को बराबर-बराबर मिलाकर उसमें कपड़ा भिगोकर काटे हुए स्थान पर पट्टी बांधनी चाहिए या उस स्थान को नमक मिले पानी से बराबर धोते रहना चाहिए लेकिन मिट्टी की पुलटिस सबसे अधिक लाभदायक है। जिसका अनुभव उस मनुष्य को अवश्य हुआ

ोगा जिसे बिच्छू ने काट खाया हो और उसने पुलटिस का उप-
ार किया हो। पुलटिस जितना हो सके मोटी होनी चाहिए।
ान लीजिए किसी के हाथ की अंगुली में बिच्छू ने काटा हो तो
ुलटिस को कुहनी तक फैलाना चाहिये यदि अँगुली को कुछ देर
क भीगी मिट्टी से भरे हुए एक बड़े बर्तन में डूबोये रखें तो
र्द शीघ्र जाता रहेगा। कनगोजर या और विषैल डंक मारने
ाले जानवरों के काटने पर भी यही उपचार करना चाहिये।

२०—उपसंहार

स्वास्थ्य के विषय में मुझे जो कुछ कहना था वह कह चुका। अब इसे समाप्त करने से पहले इस पुस्तक के लिखने के मुख्य उद्देश्य को विस्तृत रूप से बतलाता हूँ।

इस पुस्तक को लिखते समय मैंने इस प्रश्न पर बार-बार विचार किया कि इसे मैं क्यों लिख रहा हूँ। मैं कोई डाक्टर नहीं हूँ और न मुझे इन विषयों का यथेष्ट ज्ञान ही है। अतः अधिक सम्भव है कि मेरे विचार अधूरे रह गये हों।

इसका उत्तर यही हो सकता है कि वैद्यक विद्या की रचना ही अधूरी है। इसके अधिकांश विषय काल्पनिक ही हैं। ये प्रकरण निःस्वार्थ भाव से लिखे गये हैं। रोगों के उपचार की अपेक्षा उनके जड़ को अंकुरित न होने देने की इसमें अधिक चेष्टा की गई है। थोड़ा सा उद्योग करने से मालूम हो जायगा कि रोगों की उत्पत्ति को रोक देना एक साधारण-सी बात है इसमें अधिक जानकारी की आवश्यकता नहीं। हाँ इतना अवश्य है कि उनका अभ्यास कुछ कठिन हो हमारा मुख्य उद्देश्य यही है कि रोगों की उत्पत्ति के कारण एवं उपचार का पता लगाया जाय ताकि आवश्यकता पड़ने पर सब लोग स्वयं उसको कर सकें। यों तो स्वास्थ्य के नियमों के पालन करने की थोड़ी बहुत जानकारी सभी को होती है फिर भी यदि उसमें हमारा भी अनुभव शामिल कर लिया जाय तो कोई हानि नहीं होगी।

फिर भी अच्छे स्वास्थ्य की क्यों आवश्यकता है? इसके लिये हम इतना चिन्तित क्यों रहते हैं? हम लोगों की साधारण रहन-सहन-से यही प्रतीत होता है कि हम लोग अपने स्वास्थ्य की ओर उतना ध्यान नहीं देते जितना कि हमें देना चाहिये। यह

नर्विवाद है कि शरीर को सर्वोपरि समझना, सुख चैन करना और सके ऊपर गर्व करने को ही अगर स्वास्थ्य रक्षा का मुख्य अभि-ाय समझा जाय तो इससे तो अच्छा यही होगा कि इसमें चित्तादि विकार भरे पड़े रहें।

सभी धर्म वाले इस बात को मानते हैं कि हम लोगों का रीर ईश्वर का वासस्थान है, तथा इसी के द्वारा हम उसे प्राप्त र सकते हैं। अतः हमारा कर्तव्य है कि जहाँ तक हो सके इसे ाहर तथा भीतर से स्वच्छ एवं कलंक-रहित रखा जाय ताकि मय आने पर हम इसे उसी पवित्र अवस्था में ईश्वर को सौंप कें। जिस अवस्था में हमने इसे प्राप्त किया था। यदि हम इस यम का भलिभाँति पालन करें तो ईश्वर प्रसन्न होकर अवश्य ी हमें इसका प्रतिफल देगा और हमें अपना सच्चा पुत्र मझेगा।

ईश्वर ने सभी जीवों की आकृति प्रायः एक-सी ही बनाई है ानी सब में देखने, सुनने, खाने-पीने, गन्ध लेने और भोग करने की क्ति एक सी है, लेकिन मनुष्य शरीर सब में श्रेष्ठ है इसी कारण म इसे 'चिन्तामणि' अथवा सभी वस्तुओं को प्राप्त कराने वाला हते हैं। केवल मनुष्य ही ज्ञान द्वारा ईश्वर की उपासना कर कता है ज्ञान-ही उपासना से मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती और ना मुक्ति से सच्चा आनन्द नहीं मिल सकता।

हमारा स्थूल शरीर तभी सार्थक हो सकता है जब कि हम से ईश्वर का मन्दिर मानेंगे एवं उसी की आराधना के लिये से अर्पित कर देंगे। यह रक्त, मांस और हड्डियों के अलावा ौर कुछ भी नहीं है और इससे जो मल-मूत्र निकलता है सिवाय ष के और कुछ नहीं है। जो गन्दगी हमारे शरीर से निकलती , उसे छूना तो दूर रहा हम उसे ध्यान में भी नहीं लाते। इस रीर का पालन करने के लिए हम झूठ बोलते हैं, विश्वासघात

करते हैं एवं इससे भी अधिक बुरे कर्मों को करते हैं। यह कैसी लज्जा की बात है कि हम इन कुकर्मों को करके इस नश्वर शरीर की रक्षा करते हैं

जिस चीज में गुण होता है उसमें अवगुण का होना भी अनिवार्य है। यही दशा हमारे शरीर की भी है यदि ऐसा न हो तो एक बिना दूसरे का मूल्य ही नहीं समझ पावें। सूर्य जिसके ताप और प्रकाश में इस विश्व के जीवन का आधार है सभी वस्तुओं को जलाकर क्षार कर देने की भी शक्ति वर्तमान है। ऐसे ही एक राजा अपनी प्रजा की उन्नति एवं अवनति दोनों का ही कारण हो सकता है। इसी प्रकार यदि हम अपने मन पर अंकुश रखें तो यह शरीर सार्थक है अन्यथा निरंकुश होने से ही वह पतित अवस्था को प्राप्त होकर निरर्थक हो जाता है। कहा भी गया है कि "मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयः" अर्थात् मनुष्य का मन ही उसके मोक्ष तथा बन्धन दोनों का कारण होता है।

हम लोगों के शरीर में अन्तरात्मा और कुवृत्ति (पाप) दोनों में सदैव संघर्ष हुआ करता है। इधर अन्तरात्मा शरीर पर अपना अधिकार जमाना चाहती है और उधर पापरूपी शैतान उसे अपने वश में करना चाहता है। यदि अन्तरात्मा की विजय हुई तब तो यह शरीर दिव्य होकर रत्नों की एक खान बन जाता है और यदि शैतान की विजय हुई तो यह महापापों का घर बन जाता है। ऐसा शरीर साक्षात् नर्क के समान है, जिसमें सड़ने गलने वाले पदार्थ भरे जाते हैं। जिससे दुर्गन्ध पैदा होता है, जिसके हाथ-पाँव सदैव बुरे कर्मों को करते हैं, जिह्वा ऐसे पदार्थों का स्वाद चाहती है जिसे नहीं खाना चाहिये और वह सदैव ऐसी वाणी बोलती है जिसे नहीं बोलना चाहिए। उसकी आँखें ऐसी वस्तुओं को देखना चाहती हैं जो देखने योग्य नहीं है।

सके कान ऐसे शब्दों को सुनना चाहते हैं जो सुनने के योग्य हीं और नाक ऐसे गन्ध को चाहता जो सूँघने योग्य नहीं। फिर ी लोग नर्क को तो भूल कर स्वर्ग नहीं कहते लेकिन ऐसे शरीर ो जो नर्क से भी बुरा है स्वर्ग के मानिन्द समझते हैं। इसके म्बन्ध में हमारे विचार कैसे पतित हैं और हमारा गर्व कैसा णित है। पाखाना को पाखाना और महल को महल की दृष्टि देखना चाहिए। ठीक यही अवस्था हमारे शरीर की है। शरीर ो अन्तरात्मा के वश में रख कर कुवृत्तियों के वश में रख कर ारोग्य की इच्छा करने के बदले उससे नाश की ही इच्छा सुख र है।

आरोग्य के सम्बन्ध में मैं सदा यही कहता आया हूँ कि ास्तविक स्वास्थ्य हम तभी प्राप्त कर सकते हैं जब हम लोग उसके ियमों का सच्चे रूप में पालन करेंगे। बिना स्वास्थ्य के सच्चा ुख नहीं प्राप्त हो सकता और हम तभी स्वस्थ हो सकते हैं जब म अपने जिह्वा को वश में करें, जब हम अपने खाद्य पदार्थ में ावधानी रखेंगे तो अन्य इन्द्रियाँ आप ही आप दमन हो ावेंगी। जिसने अपने इन्द्रियों को वश में कर लिया है उसने ास्तव में संसार को वश में कर लिया है और वह ईश्वरीय अंश ो जाता है। लेकिन रामायण पढ़ने से राम, गीता से कृष्ण, ...रान से खुदा और बाइबिल से ईसामसीह नहीं प्राप्त हो सकते। तो तभी मिलेंगे जब हम वैसा आचरण करेंगे। सत् कर्मों र सच्चरित्रता अवलम्बित है और सत् कर्म सत्य पर निर्भर हैं। ातः सत्यता ही सब का मूल है। यही हमारे सत् कर्मों एवं ाफलता की कुंजी है यदि हम इन प्रकरणों के आधार पर थोड़ा ी सत्य के प्रेमी बनें तो इस पुस्तक के लिखने का परिश्रम मैं ाफल समझूँगा'।

* समाप्त *